विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१७ दिसम्बर—१९९८ अंक—१२

रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, फलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चौपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची—(बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपूर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम—अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३. श्री ओम भक्त बुदाथोपी—डाँग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्री मां सारदा देवी ने कहा है		१
२. विनय (कविता)	डॉ० केदारनाथ लाभ	२
३. आधुनिक युग में मां सारदा का अवदान	श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द	३
४. निखिल जगत माता	स्वामी निखिलेश्वरानन्द	६
५. आध्यात्मिक अनुभूति की सत्यता (३)	स्वामी यतीश्वरानन्द	१०
६. आध्यात्मिक जीवन का मर्म	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द	१७
७. सुनु कपीस लंकापति वीरा	श्री मुरारी बापू	२५
८. एक जेल का आश्रम में रूपान्तरण		२७
९. सूचना		२९

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१७ दिसम्बर—१९९८ अंक—१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री माँ सारदा देवी ने कहा है

"बेटा, अपनी माँ न होने से इतना आओगे क्यों? जो जिसका है, वह उसी का रहता है; युग-युग में अवतार होते हैं। मैं तुम्हारी अपनी माँ हूँ; समय पर पहचानोगे।"

"देखो बेटो, यह शरीर (अपना शरीर दिखाकर) देव शरीर है।... देखो, बेटी, मेरे रहते ये कोई हमें नहीं जान सकेंगे, बाद में सब समझेंगे।"

"पति कहो, पुत्र कहो, शरीर कहो—सब माया है। ये सब माया के बन्धन हैं।... देह भला क्या है, बेटी, मुट्ठी भर राख ही तो! उसका फिर क्या गर्व करना! कितनी भी बड़ी देह हो, जलाने के बाद डेढ़ सेर राख ही तो बचती है। फिर भी लोग उसके प्रति कितने आसक्त हैं।"

"यदि शान्ति चाहो, बेटी, तो किसी का दोष मत देखना। दोष देखना अपना। संसार को अपना बना लेना सीखो। कोई पराया नहीं है बेटी, यह सारी दुनिया तुम्हारी अपनी है।"

"अपने मन का सारा भार ठाकुर को सौंप दो। तुम उनके सामने अपने कष्टों को बताते हुए रोओ। तुम देखोगे कि वे तुम्हारी झोली तुम्हारी इच्छित वस्तुओं से भर देंगे।

विनय

—डॉ० केदारनाथ लाभ

माँ सारदेश्वरी तू इस दीन पर दया कर !
मातेश्वरी दया कर, परमेश्वरी दया कर !

आकाश से गिरा हूँ
दुःख-दाह से घिरा हूँ
निज अंक में लगा ले, माँ पंक से उठा कर।

आनन्द-धाम है तू
कल्याण-धाम है तू
विश्राम-धाम है तू, सुख-धाम स्नेह-आगर।

कुरुणेश्वरी तुम्हारी
मैं हूँ कृपा-भिखारी
अपना मुझे बना ले, त्रय-ताप को मिटाकर।

मन-प्राण में पधारो
भव-रोग से उबारो
तारो जननि, न लीले नित काम-क्रोध-सागर !

मैं हूँ अधम अपावन
कामानुरक्त जीवन
सन्तान हूँ अकिंचन, जाऊँ किधर, कहाँ घर।

भय-मुक्त अब करो माँ
नित युक्त अब करो माँ
चित शुद्ध अब करो माँ, राजेश्वरी कृपाकर।

तू पाप ताप हारिणि !
शरणागत उद्धारिणि !
निज शरण में धरो माँ, अपना मुझे बनाकर !

आधुनिक युग में माँ सारदा का अवदान

—श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द
पूर्व अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन

त्रुटियों एवं अन्ध-विश्वासों से मुक्त करके तथा पतन से इसकी रक्षा करके धर्म के वास्तविक स्वरूप को हमारे समक्ष उद्घाटित करने के लिए ही रामकृष्ण विवेकानन्द का आगमन हुआ था। श्री रामकृष्ण के साथ माँ सारदा भी इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु अवतरित हुई थी।

हमलोग थोड़ी इस बात की चर्चा करें कि माँ ने हमलोगों को क्या दिया ? बाह्य रूप से उनमें कोई विशिष्टता नहीं दिखाई देती है। उन्होंने एक साधारण व्यक्ति की तरह जीवन व्यतीत किया था। लेकिन उनके जीवन में एक मधुरता थी। प्रारम्भ में मैं इसकी धारणा नहीं कर सका। जब "श्री श्री मायेर कथा" का प्रथम एवं द्वितीय खण्ड प्रकाशित हुआ तो मैंने दोनों खण्डों को बड़ी उत्सुकतापूर्वक पढ़ डाला। एक भक्त महिला—जो अक्सर माँ के पास आती थी—ने श्रीमाँ की दैनिक घटनाओं को लिपिबद्ध कर रखा था। उक्त पुस्तक के प्रथम खंड में श्री-श्रीमाँ के दैनिक जीवन की घटनाओं का वर्णन है और द्वितीय खण्ड में उनके उपदेशों का संग्रह है। दोनों खण्डों को पढ़ने के बाद मुझे द्वितीय खण्ड अधिक पसंद आया। प्रथम खण्ड भी निःसन्देह अच्छा था, लेकिन मैं यह नहीं समझ सका कि उसकी क्या विशेषता थी। जब पुस्तक का अंग्रेजी रूपान्तर हुआ और उसे अमेरिका भेजा गया तो पता चला कि अमेरिकन महिलाओं ने द्वितीय खण्ड की अपेक्षा प्रथम खण्ड को ही अधिक पसंद किया। वे अपने आदर्शों के माध्यम से शांति नहीं पा रही थीं। अतएव, इस बात की खोज में थीं कि भारतीय-नारी पारम्परिक रूप से किस तरह का जीवन व्यतीत करती हैं। इसे वे माँ की जीवनी में पा गयीं। वे सब शांति-प्राप्ति का तरीका चाह रही थीं। यही कारण है कि उनलोगों ने प्रथम खण्ड को पसंद किया।

हमारे देश की महिलाएँ प्राचीन भारतीय आदर्श भूल रही हैं। हमारे देश में, वर्त्तमान समय में, उसी आदर्श पर चलने की जरूरत है। नारी-सम्मेलनों में पारित प्रस्तावों को पढ़कर हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश की महिलाएँ भारतीय आदर्श को भूलकर पाश्चात्य नारियों के आदर्श को अपना रही हैं। इससे हम उनके विचारों के झुकाव को समझ सकते हैं। भारतीय महिलाएँ उन्हीं पाश्चात्य आदर्शों की ओर तीव्र गति से बढ़ रही हैं जिनके मायाजाल से पाश्चात्य-महिलाएँ अपने-आप को मुक्त करने में लगी हैं। श्री श्रीमाँ ने आदर्श जीवन दिखाया जिसे जीकर शांति पायी जा सकती है। भारतीय-महिलाओं को इसी आदर्श को अपनाना होगा।

माँ के जीवन की विशिष्टता उनके विश्वजनीन मातृत्व में है। जो कोई भी उनके पास गया वह उनके प्रेम से अभिभूत हो गया। केवल वे ही नहीं, जो उनके पास आध्यात्मिक-शिक्षा प्राप्त करने जाते थे, बल्कि वे भी, जो घर में या खेतों में कार्य

करते थे, उनके प्रेम-बन्धन में बंध जाते थे। श्री-श्रीमाँ के लीला-संवरण के कई वर्ष बाद भी वे कभी-कभी वहाँ जाया करते थे। किसी के यह पूछने पर कि "तुम अभी भी यहाँ क्यों आते हो ?" वे कहते कि "हमलोग माँ के प्रेम को भूल नहीं सकते हैं।" अभी भी माँ की चर्चा मात्र से उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। इसी से हम यह समझ सकते हैं कि माँ के प्रति वे किस प्रकार का आकर्षण बोध करते थे। वे माँ के प्रेम को भूल नहीं सकते हैं। जाने या अनजाने रूप से भी यदि कोई ईश्वर के प्रति इस तरह का आकर्षण-बोध करे तो उसकी मुक्ति निश्चित है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्री-श्रीमाँ के प्रति अपने प्रेम के कारण पाश्चात्य भक्त-महिलाएँ भी मुक्त हो जायेंगी।

हमारे संघ के प्रति माँ का अवदान अगणित है। यदि माँ न होती तो इसमें सन्देह है कि श्री रामकृष्ण के सभी संन्यासी शिष्य संघबद्ध होकर एक साथ रह पाते। अधिक संभावना थी कि वे विभिन्न स्थानों में जाकर तपस्या में अपना जीवन व्यतीत कर देते। श्री-श्रीमाँ के स्नेह के कारण ही एक धार्मिक संघ के रूप में वे एक साथ रहे। इसके अलावे जब माँ बोध गया गयीं तो वहाँ के मठ को देखकर उन्होंने श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना की कि उनकी सन्तानों के लिए भी इसी तरह का मठ हो जहाँ वे एक साथ रह सकें। आज जो यह मठ-मिशन देखते हो, यह इसी प्रार्थना का फल है। फिर किसी के लिए भी वास्तव में रामकृष्ण और विवेकानन्द को उस रूप में समझना असंभव था जिस रूप में माँ ने उन्हें समझा था। यद्यपि वह एक साधारण ग्रामीण महिला थीं तथापि सोचने-समझने की अद्भुत क्षमता उनमें थी। विदेश से लौटने पर स्वामीजी ने जब साधुओं के द्वारा किये जाने वाले सेवा कार्यों का श्रीगणेश किया तो अनेक लोगों ने--जिनमें उनके कुछ गुरुभाई भी थे—सोचा कि ये पाश्चात्य विचार हैं और श्रीरामकृष्ण के विचारों के अनुरूप नहीं हैं। निःसन्देह, शीघ्र ही गुरुभाइयों ने स्वामीजी के विचारों को स्वीकार कर लिया, लेकिन फिर भी कुछेक लोगों के मन में सन्देह बना ही था। मास्टर महाशय (श्रीरामकृष्ण वचनामृत के लेखक) का भी यही दृष्टिकोण था। मास्टर महाशय के कारण उद्बोधन-गृह के कुछ संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियों के भी मन में वही सन्देह घर कर गया। उन्होंने माँ से इसके बारे में पूछा। माँ ने उत्तर दिया, "मास्टर को जो अच्छा लगे कहने दो, नरेन जो कुछ कर रहा है, वह श्रीरामकृष्ण के विचारों के पूर्ण अनुरूप है।" फिर उन्होंने पूछा, "क्या उद्बोधन एवं अन्य पुस्तकों का प्रकाशन भी श्रीरामकृष्ण के विचारों के अनुरूप है ?" माँ ने जवाब दिया,—"हाँ, ये भी हैं।" इस तरह एक ही वाक्य में स्वामीजी का मूल मंत्र—आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च—को पूर्ण समर्थन उन्होंने प्रदान कर दिया।

जब माँ वाराणसी गयीं तो सेवाश्रम के नजदीक एक मकान में ठहरीं। एक दिन वह सेवाश्रम देखने गयीं और लौटते समय बोलीं "मैंने जाकर अस्पताल देखा। वहाँ ठाकुर अधिष्ठित हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं।" फिर उन्होंने दस रुपये का नोट दान-स्वरूप भिजवाया। उस नोट को अभी तक सेवाश्रम में सुरक्षित रखा गया है। इस प्रकार माँ ने संघ की कई समस्याओं का समाधान कर दिया।

माँ ने विश्व को क्या दिया ? उन्होंने मातृत्व का आदर्श दिया। उन्होंने अपने जीवन में प्राचीन भारतीय आदर्श को धारण किया ताकि उनके जीवन को देखकर महिलाएँ आदर्श जीवन यापन कर सकें। इन दिनों भारतीय महिलाएँ आगे आ रही हैं और प्राचीन युग के अनुसार रसोईघर में

सीमित न रहकर विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों में भाग ले रही हैं। उनमें कुछ राजनीति में तो कुछ चिकित्सा कार्य में, कुछ सेवकार्य में तो कुछ अन्य कार्यों में भाग ले रही हैं। इस प्रकार उनका कार्य क्षेत्र सर्वत्र फैल गया है। वस्तुतः इसकी आवश्यकता है, लेकिन साथ ही इन क्रिया-कलापों में फँसने से आँखों से आदर्श के ओझल होने का डर भी है।

यही कारण है कि माँ ने एक आदर्श-जीवन दिखाया। मानो कि उन्होंने आदर्श का एक खांचा तैयार कर अपनी संततियों के लिए इसे पीछे छोड़ गयीं। हमारे देश में नारी का आदर्श मातृत्व और पवित्रता है। हमारी बालिकाओं को माँ के जीवन-साँचे में अपने आप को ढालना होगा, उन्हें भारत के अपने आदर्श को दृढ़तापूर्वक पकड़ना होगा और साथ ही नयी परिस्थितियों के अनुसार चलना होगा। माँ ने जिस आदर्श को दिखाया है वह केवल भारत वर्ष के लिए ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए है। अतएव, श्री श्रीमाँ के पद्-चिन्हों का अनुसरण कर उसी के अनुसार अपने जीवन को ढालने से नारी जाति का कल्याण तो होगा ही साथ ही विश्व का भी कल्याण होगा।

('स्पिरिचुअल आइडियल फॉर द प्रेजेन्ट एज' नामक पुस्तक से साभार अनूदित। अनुवादक : स्वामी नित्यज्ञानानन्द, बेलुर मठ)

विवेक शिखा की 'संरक्षक'-योजना

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की एक योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये विवेक शिखा के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। 'विवेक शिखा' में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे यावज्जीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इस पत्रिका के संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

—व्यवस्थापक

संरक्षक-सूची

संरक्षक का नाम	स्थान	रुपये
१. श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	३,९९०/-
२. श्री नन्द लाल टांटिया	कलकत्ता	१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा	जम्मूतवी	१,०००/-

निखिल जगत् माता

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन
पोरबन्दर (गुजरात)

"बेटा अमजद, पहले भोजन कर लो, बाकी काम बाद में करना"—श्री माँ सारदा देवी ने पुकारा। माँ का ममतामय आग्रह अमजद कैसे टाल सकता था? उसे भोजन के लिए बैठना पड़ा। अमजद वैसे तो जयरामबाटी के पास ही के गाँव के मुसलमान डाकुओं में से एक था; परन्तु अब वह श्री माँ का भक्त बन गया था। इन मुसलमान डाकुओं को जब मकान बनाने के लिए रखा गया तब ग्रामवासियों ने भयभीत होकर इसका विरोध किया था; किन्तु तत्पश्चात् डाकुओं के स्वभाव का परिवर्तन देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और कहने लगे, "देखो तो, माँ के स्नेह-सिंचित जादू से डाकू भी भक्त बन गये।"

अमजद मकान का निर्माण कार्य छोड़कर भोजन करने बैठा। श्री माँ की भतीजी नलिनी दीदी परोसने लगीं। यह बात आज से लगभग चौरासी वर्ष पूर्व की है, जब जाति-प्रथा के बन्धन बहुत ही सख्त थे। उस पर भी जयरामबाटी बंगाल का एक गाँव तथा श्री माँ एक ब्राह्मण परिवार की विधवा। नलिनी दीदी जरा दूर से खाना फेंक रही हों—इसी प्रकार अमजद को परोसने लगीं। यह देखकर श्री माँ ने कहा, "इस प्रकार परोसने से क्या किसी का पेट भर सकता है? ला, मैं ही परोस देती हूँ।" इतना कहकर वे स्वयं परोसने लगीं और अमजद से कहा' "बेटा अमजद, पेट भरकर भोजन करना।" भोजन पूरा होते ही माँ ने स्वयं ही जूठा स्थान साफ किया। यह देखकर नलिनी दीदी चिल्लाने लगी, "ओ फूफी, तुम्हारी जात गयी।" श्री माँ ने उलाहने भरे स्वर में कहा, "चुप रह, जिस तरह शरत् मेरा बेटा है, वैसे ही अमजद भी मेरा बेटा है।" श्री माँ के मातृहृदय के लिए श्री रामकृष्णदेव के अंतरंग पार्षद तथा रामकृष्ण मिशन के प्रथम जनरल सेक्रेटरी शरत महाराज (स्वामी सारदानन्द) और एक मुसलमान डाकू अमजद एक बन गये।

१९१०! श्री माँ दक्षिण भारत की तीर्थ-यात्रा करती हुइ बंगलोर पधारी हैं। अनेक भक्त उनके दर्शन को आ रहे हैं। एक अछूत जाति का बालक भी श्री माँ के स्नेह-पाश में बँधकर हर रोज उनके पास आता है। उच्चकुल के भक्तों को यह पसन्द नहीं। किन्तु, क्या करें? श्री माँ मन में सबकुछ समझती हैं—किन्तु—उनके लिए तो सभी बराबर हैं। एक बार भक्तों ने इच्छा व्यक्त की कि, वे माँ के साथ बैठकर भोजन-प्रसाद ग्रहण करना चाहते हैं। माँ ने इस अवसर का लाभ लेकर शर्त्त रखी कि, अगर उस हरिजन लड़के के साथ भोजन लेने के लिए तैयार हों, तो मैं स्वीकारूँ। भक्तों को लाचार होकर शर्त्त स्वीकारनी पड़ी। माँ ने सहर्ष उस हरिजन लड़के को बुला भेजा और उसके हाथ से ही भोजन परोसवाया। उस जमाने में (गांधीजी ने हरिजनों के उद्धार का कार्यक्रम शुरू किया उसके बहुत समय पूर्व) यह एक अत्यन्त क्रांतिकारी कदम था। श्री माँ इसी तरह किसी प्रकार की आडंबर-रहित जाति-प्रथा को मिटाती थीं। श्री मां के मातृहृदय के पास कुल, जाति आदि के बन्धन स्वयमेव दूर हो जाते।

श्री माँ उद्बोधन भवन में निवास कर रही थीं। उनकी अस्वस्थता के कारण उस समय किसी को भी उनके दर्शन की अनुमति न थी। एक दिन एक पारसी युवक ने श्री माँ के दर्शन की जिद की। शरत महाराज राजी नहीं थे। तबतक तो श्री माँ ने ऊपर से कहलवाया, "नीचे आये हुए व्यक्ति को ऊपर आने दो।" अब क्या हो? शरत महाराज ने लाचार होकर युवक को ऊपर जाने दिया। कुछ देर बाद यह युवक प्रसन्नतापूर्वक नीचे उतरा। श्री माँ ने मात्र उसे दर्शन ही न दिया अपितु मन्त्र दीक्षा भी प्रदान की। शरत महाराज ने कहा, "माँ की इच्छा एक पारसी को शिष्य बनाने की हुई - तब मैं रोकने वाला कौन होता हूँ?" यह पारसी युवक ही—प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता-निर्देशक सोहराव मोदी थे।

स्वामी विवेकानन्द जब विदेश से वापस आये तब अपने साथ भारत के लिए एक अमूल्य भेंट लाये थे—उनकी शिष्या भगिनी निवेदिता। अन्य कई विदेशी महिलाएं भी साथ थीं—ऑली बुल, मिस मैक्लाउड, आदि। स्वामी जी को चिंता थी कि रूढ़िवादी समाज में पालन-पोषण प्राप्त की हुई श्री माँ उन्हें स्वीकारेंगी कि नहीं, परन्तु प्रथम मुलाकात में ही श्रीमाँ ने उन्हें अपने स्नेहपाश में बाँधकर अपना बना लिया। भगिनी निवेदिता ने श्रीमाँ के स्नेह का स्मरण कर अपने पत्र (११ दिसंबर, १९१०) में लिखा था—"माँ, माता, कैसा स्नेह छलकाती हैं आप! और आपका यह स्नेह हमारे स्नेह की तरह न तो उच्छृंखल ही है और न ही उग्र। यह कोई पार्थिव प्रेम नहीं अपितु, एक सौम्य शांति है। सबका कल्याण करती, किसी का भी अमंगल न चाहने वाली, लीलामय स्वर्णिम आभा।"

एक युवक जयरामवाटी में अक्सर आया करता था। किसी कारणवश वह चरित्र-भ्रष्ट हो गया। दूसरे भक्तों ने विनती की कि, अब उस युवक को अपने पास न आने दें। माँ ने करुणस्वर में कहा, "मैं माँ होकर सन्तान को मिलने से इन्कार कैसे कर सकती हूँ?" श्री माँ कहतीं, "मेरी सन्तान अगर कीचड़ से सनी हो या उसे धूल चिपक गयी हो—तो उसे साफ करके अपनी गोद में लेने की जिम्मेदारी क्या मेरी नहीं?" श्री माँ थीं पापी-तापी दुष्टों की भी माँ!

श्री माँ की माता जी श्यामासुन्दरी देवी ने एकबार खेदपूर्वक कहा था, "दामाद मिला भी तो ऐसा कि संसार करेगा नहीं और मेरी सारदा को सन्तान का सुख भी नहीं मिलेगा।" श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें कहा था, "आप चिन्ता न करें माँ, बाद में आपकी बेटी को इतने सारे लोग माँ-माँ, कहकर बुलायेंगे कि वह हैरान हो जायगी।" सचमुच, कितने ही लोग माँ के जीवन-काल के दौरान उनके पास आकर्षित होकर आये! और उनकी महासमाधि के बाद, खासकर उनकी जन्म-शताब्दी (१९५३) के बाद तो 'माँ-माँ' की पुकार चारों तरफ बढ़ ही रही है। लगता है निखिल विश्व के लोगों पर श्री माँ के मातृहृदय की जादुई असर फैल रहा है। 'मां-मां' की पुकार करने वालों में भारत के लोग हैं, विदेश के भी हैं, साधु-सज्जन हैं, दुर्जन भी हैं, गरीब-दुःखी हैं, श्रीमंत हैं, उच्च जाति के हैं, नीच जाति के हैं, हिन्दू हैं, मुसलमान, पारसी, ईसाई हैं। अनगिनत लोग किस तरह मातृहृदय के स्नेह-पाश में बंध रहे हैं, उसका अन्दाज लगाना मुश्किल है।

२० जनवरी, १९८७। रामकृष्ण मठ और मिशन के मुख्य केन्द्र बेलुड़ मठ का दर्शन करने के लिए रूस के विद्वान तथा वैज्ञानिक आये हुए हैं। उनमें एक प्रसिद्ध विद्वान हैं—डॉ० आर० रिबेकोव। सभी विद्वान बेलुड़ मठ के विभिन्न स्थानों का परिदर्शन कर रहे हैं, परन्तु रिबेकोव

तो पहुँच गये हैं—श्री माँ सारदा देवी के मन्दिर में। उन्हें वहीं पर अधिक समय बिताने में आनन्द आता है। वे श्री रामकृष्ण के बारे में रूसी भाषा में एक वृहद् ग्रन्थ लिखने का विचार कर रहे हैं। किन्तु, उसका प्रारम्भ श्री माँ सारदा देवी से करना चाहते हैं। इसका कारण पूछने पर उन्होंने बताया था, "मैं श्री रामकृष्ण के बारे में लिखे जाने वाले ग्रन्थ का प्रारंभ श्री मां सारदा देवी से करना चाहता हूँ क्योंकि वे वर्तमान जगत के लिए श्री रामकृष्ण देव की श्रेष्ठ भेंट हैं। वे एक साधारण भारतीय ग्रामीण बालिका थीं परन्तु श्री रामकृष्ण ने उन्हें एक असाधारण विराट व्यक्तित्व में रूपांतरित किया है। मेरे लिए वे भारतवर्ष के प्रतीक के रूप में हैं। देवी होते हुए भी वे मानव थीं, साधारण नारी होते हुए भी वे महान सन्त साधिका थीं, उनके प्रति मेरा अनन्य आकर्षण है।"

रामकृष्ण मठ के हॉलीवुड केन्द्र में एक दिन एक अमेरिकन महिला आयी। वहां दीवाल पर टंगे श्री मां सारदा देवी के चित्र को देखते-देखते रोने लगीं। वहां के स्वामी जी द्वारा आश्चर्य से रोने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया—"इसी की खोज में तो मैं पूरे अमेरिका में घूम रही हूँ। मैं उनका नाम नहीं जानती, परन्तु वो अक्सर मुझे दर्शन देती हैं, और अपनी सन्तानों से मिलने के लिए कहती हैं। क्या जादू है उनके इन दो नयनों में! ओह, कैसा आनन्द होता है, मैं इसका वर्णन नहीं कर सकती।"

बांग्ला देश की बात है। रामकृष्ण मिशन के कई संन्यासी राहत कार्य के लिए भारत से वहां गये हैं। ढाका से जशोहर जाते समय उन्होंने एक चाय की दूकान के पास जीप रुकवायी। दूकानदार मुसलमान था। चाय पीते-पीते संन्यासियों ने आश्चर्यपूर्वक देखा कि, दुकान में श्री मां सारदा देवी की छवि टंगी हुई है, अन्य कोई छवि नहीं। संन्यासियों ने दूकानदार से पूछा, "यह किसकी छवि है, जानते हो?" दूकानदार ने कहा, "ना।" तो फिर यह छवि यहां क्यों रखते हो? उसके जवाब में दूकानदार ने कहा, "मैं जब चार वर्ष का था तब मेरी मां गुजर गयी। बड़े होने पर दूसरों को मातृस्नेह मिलता देखकर मन में दुःख होता—अकेले-अकेले ही रोता। कल्पना में मैं अपनी मां की मूर्ति का निर्माण करता और स्वप्न में उसी मूर्ति को देखता। एक दिन अचानक एक कैलेन्डर मिला। उसमें यह छवि देखकर महसा लगा—"यही तो है मेरी स्वप्न में देखी हुई मां! दूसरे ही दिन छवि को मढ़ा लिया। इसे देखकर ही मेरी आत्मा को शीतलता मिलती है। मैं नहीं जानता कि किसकी है यह छवि। मैं तो इतना ही जानता हूँ – यही है मेरी खोयी हुई मां।" इतना कहते ही उसके नेत्रों से आंसू ढल पड़े।

सात साल पहले की बात है। रामकृष्ण मिशन के पुस्तक विक्रय केन्द्र में सुबह ग्यारह बजे एक रिक्सावाला एक बंगला पुस्तक खरीदने आया, किन्तु पुस्तक का नाम वह जानता नहीं था। इतना ही बोलता, "थोड़ी देर पहले ही एक बहन यह पुस्तक खरीद गयी हैं, उनके पास यह देखा है। पुस्तक के मुख्यपृष्ठ पर एक नारी का फोटो है।" उसे "शतरूपे शारदा" नामक पुस्तक बतायी गयी तो वह सहर्ष बोल उठा—"हां, हां, यही है वो पुस्तक! मुझे खरीदनी है।" परन्तु जब उसे पता चला कि पुस्तक की कीमत ६० रुपया है—तब वह निराश हो गया। क्योंकि उसके पास दस रुपया ही था।

विक्रय केन्द्र के संन्यासी ने पूछा, "आपको पढ़ना आता है?"

रिक्शावाले ने कहा, "नहीं बाबूजी, मेरा बेटा

दसवीं कक्षा में पढ़ता है वह मुझे पढ़कर सुना देगा।"

संन्यासी ने पूछा, "आपको पता है कि यह पुस्तक किसके बारे में है और फोटो किनकी है?"

रिक्शावाले ने कहा, "नहीं बाबू जी, मैं कुछ नहीं जानता। उस बहनजी को रिक्शा में ले जा रहा था तब यह पुस्तक देखी थी। पुस्तक के ऊपर का फोटो देखने के बाद मेरा मन आकुल-व्याकुल हो गया है। फोटो देखकर लगा, जैसे यह मेरी माँ की तस्वीर है। मेरे बचपन में ही मेरी माँ चल बसी थी इसलिए पता नहीं कि मेरी माँ देखने में कैसी थी। किन्तु यह फोटो देखकर लगा जैसे मेरी माँ ही है। इसलिए उस बहनजी को पहुँचाकर तुरत यह पुस्तक खरीदने यहाँ आया; किन्तु मेरे पास तो मात्र दस रुपये ही हैं।"

ऐसा कहते ही वह रो पड़ा। संन्यासी ने उसे कहा, "चिंता न करो। तुम्हें यह पुस्तक उपहार के रूप में दे रहा हूँ। इसकी कोई कीमत नहीं देनी पड़ेगी।"

परन्तु रिक्शावाले ने मुफ्त में पुस्तक लेने से इन्कार किया। अपनी तरफ से दस रुपए देकर पुस्तक तथा संन्यासी का दिया श्री माँ का फोटो लेकर आनन्दपूर्वक वह चला गया।

इस प्रकार न जाने कितने लोगों को श्री माँ अपनी तरफ आकर्षित कर रही हैं इसका अन्दाज लगाना मुश्किल है। देश के विभिन्न प्रांतों में तथा विदेशों में—बांग्ला देश, जापान, जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, स्वीट्जरलैन्ड, पोलैन्ड, कैनेडा, अमेरिका, आफ्रिका, रशिया, आदि देशों में भी श्री माँ का मातृस्नेह बरस रहा है। ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, सज्जन-दुर्जन, शिक्षित-अशिक्षित, हिन्दू-मुसलमान, ईसाई, पारसी सब पर समान रूप से बरस रहा है निखिल जगत की माता का यह मातृस्नेह। श्रीमाँ का यह अद्भुत मातृत्व जाति आदि के भेदभाव स्वयमेव दूर कर देता है, कौमी एकता, राष्ट्रीय एकता का तथा विश्व-बन्धुत्व का मार्ग स्वयं प्रशस्त कर देता है।

श्री माँ ने कहा था, "ईश्वर के मातृत्व भाव के प्रचार के लिए श्री रामकृष्ण मुझे छोड़ गये हैं।" श्री माँ ने स्वीकारा है, "मैं सत् की माँ हूँ, असत् की भी माँ हूँ। मैं सबकी माँ हूँ, पशु-पक्षी की भी।"

अन्य एक प्रसंग में एक भक्त को उन्होंने कहा था, "मैं मात्र कहने के लिए ही माँ नहीं, सिर्फ गुरुपत्नी नहीं, सौतेली माँ नहीं, तुम्हारी अपनी सच्ची माँ हूँ।

रामकृष्ण मठ तथा मिशन के छठे परमाध्यक्ष स्वामी बिरजानन्द जी महाराज श्री माँ के बारे में कहते—"मेरी जन्मजन्मान्तर की मां!"

श्री माँ अभय प्रदान करती हुई कहती हैं—"जब तुम विपत्ति में हो, दुःख में हो तब, बस इतना याद रखना कि, तुम्हारी एक मां है।" श्री मां की सन्तानों से बस एक ही अपेक्षा है कि सन्तान उन्हें याद रखें, 'मां' 'मां' कहकर बुलाएँ। श्री मां से हमारी यह आन्तरिक प्रार्थना है—"मां, तुम्हारी तो हमसे बस एक ही अपेक्षा है कि हम तुम्हें याद रखें, तुम्हें पुकारें, परन्तु मां! इतना भी हम नहीं कर पाते। अबोध शिशु को मां ही मां-मां कहना सिखाती है न! मां, तुम्हीं हमें 'मां' 'मां' कहना सिखा दो।'

[गुजराती मासिकी श्री रामकृष्ण ज्योत से साभार गृहीत एवं श्री अशोक चंचल, राजकोट द्वारा अनूदित]

आध्यात्मिक अनुभूति की सत्यता-(३)

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
सम्पादक, वेदान्त केसरी, चेन्नई

मनोराज्य की अलौकिक घटनाओं का रहस्य

चेतना के अनेक स्तर हैं। इन्द्रियों का वह स्तर जिसमें हम भौतिक वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते है, एक स्तर है। चिन्तन करते अथवा दिवास्वप्न देखते समय हम कुछ समय के लिए मानसिक स्तर पर जीते हैं। लेकिन सामान्यतः हम इस स्तर का कुछ अंश ही जानते हैं। हम अपने मन के बारे में बहुत कम जानते हैं, और महत् नामक उस विराट समष्टि मन के बारे में तो लगभग कुछ भी नहीं जानते जिसके हमारे व्यष्टि मन अंश हैं। उसमें कौन सी शक्तियाँ छुपी हुई हैं, वहाँ कैसी विचित्र घटनाएँ होती रहती हैं, इसके बारे में हम सामान्यतः बहुत कम जानते हैं। जिस प्रकार हम भौतिक जगत् की शक्तियों का परिचालन कर सकते हैं, इसी प्रकार प्राण, अथवा मानसिक शक्ति का भी परिचालन कर सकते हैं। कुछ लोगों को यह क्षमता अपने आप प्राप्त हो जाती है। वारसा में मैं एक महिला से मिला जो वस्तुओं के अज्ञात् स्वरूप को जान जाती थी। वह बिगड़ी मशीन की त्रुटि का पता लगा लेती थी। स्वामी विवेकानन्द ने हैदराबादके एक व्यक्ति के बारे में कहा है, जो न जाने कहाँ से ताजे गुलाब, अंगूर तथा और भी बहुत-सी चीजें ला सकता था।

सभी में मानसिक शक्ति है। प्राण सभी में कार्यरत है। अन्तर केवल इतना है कि अधिकांश लोगों में वह सांसारिक सफलता और वैषयिक सुखों की पूर्ति की दिशा में पूरी तरह नियोजित है। इस क्षय को रोकने पर मानसिक शक्ति हममें संचित होने लगेगी। तब हमें यह ज्ञात होगा कि इसे आध्यात्मिक दिशा में कैसे नियोजित करना चाहिये। इसके लिए हमें आध्यात्मिक व्यक्तियों के मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है। अन्यथा संचित मानसिक शक्ति अन्य दिशाओं में प्रवाहित होती है तथा हमें कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। हम दूर-दर्शन अथवा दूर-श्रवण में अथवा दूसरों के विचारों को जानने में समर्थ हो सकते हैं। इनसे कुछ समय के लिये हमारा मनोरंजन भले ही हो, पर इनका कोई उच्च आध्यात्मिक मूल्य नहीं है। ये सत्य के साक्षात्कार के हमारे मार्ग की बाधाएँ ही हैं। सिद्धियाँ हमें पूर्णता, आनन्द और दुःखों से मुक्ति प्रदान नहीं करतीं। वे हमें और अधिक अहंकारी बनाती हैं।

ज्ञानी महापुरुष इन सिद्धियों की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। यदि वे उन्हें प्राप्त करते है, तो वे उनका दूसरों के कल्याण के लिये बहुत सावधानी से उपयोग करते हैं। स्वामी ब्रह्मानन्द आध्यात्मिक शक्ति के भंडार थे, जिसका उन्होंने दूसरों के कल्याण के लिये सावधानी से उपयोग किया था। उनमें गहरी मानसिक अन्तर्दृष्टि थी। एक दिन उन्होंने एक युवक को चेतावनी देते हुए

कहा। "सावधान, तुम्हारे चारों ओर एक गहरा मेघ छाया हुआ है, जो लगभग चालीस वर्ष की उम्र में व्यक्त होगा। वह युवक स्वामी जी की चेतावनी के समय के आसपास पागल हो गया और मर गया।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी अपने शिष्यों के भूत और भविष्य को देख सकते थे। जब मैं सर्वप्रथम उनसे मिला, तब मैं कॉलेज का युवा छात्र था। मैं अपने एक मित्र के साथ बलराम-मन्दिर में उनके दर्शन करने गया। उन्होंने मेरे मित्र को अपना हाथ-दिखाने को कहा। उसकी हथेली की ओर देखकर उन्होंने कहा," काम तुम्हारे लिये कुछ बाधा पैदा करेगा, लेकिन यदि श्रीरामकृष्ण की कृपा होगी तो वह दूर हो जाएगा।" लेकिन स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने स्वामी प्रेमानन्द जी के विनती करने पर भी मेरा हाथ नहीं देखा। मैं बहुत उदास हो गया, लेकिन जब मुझे यह पता चला कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उनके सेवक से कहा है कि मैं संन्यासी बनूँगा, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ और स्वयं को धन्य समझा। उनकी भविष्यवाणी सत्य हुई। मैं संन्यासी बना और मेरा मित्र एक गृहस्थ बना, पर वह महान भगवत् भक्त बना रहा।

१९१७ में बंगलोर में रहते समय मैं टायफायड के ज्वर से आक्रान्त हुआ। मुझे अस्पताल में भर्ती किया गया। एक दिन प्रातःकाल एक वृद्ध को लाकर मेरे पास के बिस्तर पर रखा गया। संध्या को उसकी मृत्यु हो गई। मुझे मृत्यु का भय नहीं था, लेकिन तीव्र शारीरिक वेदना मेरे लिये असह्य हो रही थी। जब मैंने सोचा कि इससे तो मर जाना अच्छा है। इस विचार के प्रबल होते ही मुझे स्वामी ब्रह्मानन्द जी का दर्शन हुआ। उन्होंने कहा। "तुम मर कैसे सकते हो ? अभी तुम्हें श्रीरामकृष्ण का कार्य करना बाकी है।" यह कहकर वे अदृश्य हो गये। इस अनुभव से मुझ में सम्पूर्ण परिवर्तन आ गया। मैं महान शान्ति और गहरे शरणागति के भाव से पूर्ण हो गया। मेरा रोग भी ठीक होने लगा। स्वामी ब्रह्मानन्द जी के कई शिष्यों को ऐसे अनुभव हुए हैं। उनमें महान शक्ति थी लेकिन उन्होंने उनका उपयोग समझदारी के साथ, केवल दूसरों के कल्याण के लिए किया।

सिद्धियाँ कई प्रकार की होती हैं। श्रीरामकृष्ण की जीवनी में हमें चन्द्र और गिरिजा नामक दो युवकों का उल्लेख मिलता है, जिनका परिचय उनकी गुरु भैरवी ब्राह्मणी ने श्रीरामकृष्ण से कराया था। चन्द्र अपने पास एक चमत्कारी गेंद रखता था, जिसकी सहायता से उसे मानव दृष्टि से अचानक ओझल होने की शक्ति प्राप्त हो गई थी। लेकिन उसने उच्चकोटि की चित्त शुद्धि प्राप्त नहीं की थी और इसलिये वह दूसरों के घर में बिना दिखे प्रविष्ट होने के लिये, इस शक्ति का दुरुपयोग करने लगा। वह शीघ्र काम ग्रस्त हो गया और फलस्वरूप उसकी शक्ति नष्ट हो गई। दूसरे युवक गिरिजा के पास दूसरी सिद्धि थी। एक रात को उसने श्रीरामकृष्ण के समक्ष इसका प्रदर्शन किया था। घना अंधेरा था और श्रीरामकृष्ण को शंभु मल्लिक के बगीचे से दक्षिणेश्वर जाने का मार्ग नहीं सूझ रहा था। गिरिजा, जो श्रीरामकृष्ण के साथ था, पीछे घूम कर खड़ा हो गया और उसकी पीठ से प्रकाश की एक चमकीली चौड़ी किरण निकली जिससे काली मन्दिर के फाटक तक का पूरा मार्ग आलोकित हो गया। परमयोगी श्रीरामकृष्ण ने कभी भी इस तरह की क्षुद्र सिद्धियों का प्रदर्शन नहीं किया। प्रस्तुत घटनाओं में, श्रीरामकृष्ण ने चन्द्र और गिरिजा की सिद्धियों को स्वयं में खींच लिया और इस तरह उनके मन को ईश्वराभिमुखी बनाया।

—(श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग से)

सभी आध्यात्मिक पुरुषों ने सिद्धियों को महत्व देने की निन्दा की है, क्योंकि ये साधक को उसके मुख्य आध्यात्मिक पथ से भ्रष्ट कर देती हैं तथा अन्त में उसका पूर्ण विनाश भी कर सकती हैं। नियमित साधना करने वाले सभी निष्ठावान साधकों के मनोजगत की अनुभूतियाँ सामान्यत होती हैं। साधक को घंटियों की ध्वनि अथवा ब्रह्माण्ड में निरंतर स्पन्दित हो रही महान् अनाहत ध्वनि सुनाई दे सकती है। अथवा उसे रहस्यमय अन्तर्ज्योति का दर्शन हो सकता है। ये सारी बातें इस बात के संकेत हैं कि तुम सही मार्ग पर हो। उनकी इतनी ही उपयोगिता है। हमें मार्ग-चिह्नों को मार्ग नहीं समझना चाहिये। यौवन में स्वामी विवेकानन्द को अद्भुत आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होती थीं। एक बार उन्हें दूर-दर्शन की शक्ति प्राप्त हुई थी। युक्तिवादी होने के कारण उन्होंने अपने अनुभवों को परखा और उन्हें सत्य पाया। लेकिन जब इस बारे में उन्होंने श्रीरामकृष्ण को कहा, तो श्रीरामकृष्ण ने कुछ दिनों के लिए ध्यान न करने की सलाह दी जिससे कि वह शक्ति चली जाय।

बहुत से लोग अशरीरी भूत प्रेतों में रूचि रखते हैं। सच्चे साधक को इनसे कोई लेना देना नहीं होता, और वह इन रहस्यमय घटनाओं से दूर ही रहता है। लेकिन मानव स्वभाव में एक अशमनीय जिज्ञासा रहती है, और बहुत से लोग अपना अमूल्य समय सच्चा आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने में बिताने के बदले "प्रेतविद्या" में व्यर्थ गंवाते हैं। आपने स्वामी अभेदानन्द की पुस्तक "मृत्यु के पार" पढ़ी होगी उसमें उन्होंने प्रेतवादियों की कई बैठकों में भाग लेने का वर्णन किया है। भारत में यदि कोई व्यक्ति प्रेतग्रस्त होता है, तो उसे तत्काल किसी मंदिर में अथवा झाड़-फूक करने वाले ओझा के पास ले जाया जाता है, और उस विपदा से मुक्ति दिलाई जाती है। लेकिन अमेरिका में वह "मीडियम" बन जाता है और इस तरह से पैसे कमाता है। माध्यम बनने की बात सत्य भले ही होवे लेकिन इस बातों के साथ खिलवाड़ करना व्यर्थ समय बरबाद करना है। श्रीरामकृष्ण के निरंजन नामक एक शिष्य थे। श्रीरामकृष्ण के पास आने के पूर्व वे एक प्रेत वादियों के समूह में माध्यम का कार्य करते थे। जब श्रीरामकृष्ण को इस बात का पता चला तो उन्होंने युवक को तत्काल वह कार्य बन्द करने को कहा। उन्होंने उससे कहा "वत्स, भूत प्रेतों का चिन्तन करने पर तुम भूत-प्रेत बन जाओगे, और यदि तुम भगवान् का चिनतन करोगे तो तुम्हारा जीवन दिव्य हो पायेगा।"

श्रीरामकृष्ण की जीवनी में हम पाते हैं कि उनका सामना अनेक प्रकार की प्रेतात्माओं से हुआ था। उनके गुरु तोतापुरी का भी दक्षिणेश्वर में एक भूत से सामना हुआ था। दक्षिणेश्वर काली मन्दिर में एक भैरव रहता था। वह दूसरों से अदृश्य था। एक दिन जब तोतापुरी पंचवटी में ध्यान कर रहे थे, तब उन्होंने एक लम्बी धुँधली आकृति को वृक्षों की शाखाओं से उतरते देखा। तोतापुरी किंचित मात्र भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने रहस्यमय आगन्तुक से कहा, "ठीक है, तुम और मैं एक ही हैं; तुम ब्रह्म की एक अभिव्यक्ति हो, मैं ब्रह्म की दूसरी अभिव्यक्ति हूँ। आओ, बैठो और ध्यान करो। भैरव अट्टाहास कर उठा और अदृश्य हो गया।

इन "आत्माओं" में समय व्यर्थ गंवाने के बदले हमें आत्माओं की आत्मा, परमात्मा की ओर जाना चाहिये जो आनन्द और शान्ति का परम कारण है। हमें मनोजगत् का अतिक्रमण करना,

उसे एक ओर छोड़ना सीख लेना चाहिये तथा सत्य परमात्मा के स्तर पर उठना चाहिये जहाँ व्यष्टि जीव समष्टि परमात्मा का संस्पर्श प्राप्त करता है। जब तक यह मिलन नहीं होता, तब तक आत्मा की प्यास बनी रहती है, और जबतक यह बनी रहेगी, तबतक सच्ची शान्ति और पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। परमात्मा का आत्मा को संस्पर्श होना चाहिये; सच्ची आन्तरिक ज्योति से हृदय के अन्धकारमय कक्ष आलोकित होने चाहिये। तभी मानव जीवन के दुःखों का अतिक्रमण कर सकता है। सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति सीधे परमात्मा से ही आती है। वह सामान्य मन और बुद्धि के परे हैं। जैसा कि महान सूफी साधक अल-ग्रजाली ने कहा है।"

"एकान्त में मेरे सामने ऐसी बातें प्रकट हुईं जिनका वर्णन करना या निर्देश करना असम्भव है। अन्तर्दृष्टि एक ज्योति से आलोकित होती है, जो उन गूढ़ बातों को और वस्तुओं को प्रकट करती है जिन्हें बुद्धि नहीं जान सकती। सूफियों की साधना पद्धति से होने वाला परिवर्तन अपने हाथ से किसी वस्तु को छूने की तरह प्रत्यक्ष अनुभूति है।"

महान् निओ-प्लेटोनिक साधक-योगी प्लोटिनस ने कहा है :

"तुम पूछते हो, हम अनन्त को कैसे जान सकते हैं? मेरा उत्तर है : युक्ति के द्वारा नहीं। वस्तुओं की परिभाषा और वर्गीकरण करना, युक्ति का कार्य है। अनन्त को उसकी वस्तु की श्रेणी में नहीं डाला जा सकता। तुम अनन्त की धारणा बुद्धि से उच्चतर क्षमता के द्वारा, एक ऐसी अवस्था में प्रवेश करके प्राप्त कर सकते हो, जिसमें तुम अपनी सीमित सत्ता नहीं रहते, जिसमें परमात्मा की सत्ता का तुम्हारे साथ सम्बन्ध होता है।"

सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति का प्रभाव :

सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति का मूल्यांकन उसके परिणाम या फल से होता है। दर्शन तथा अन्य आध्यात्मिक अनुभूतियों से चरित्र में सम्पूर्ण रूपान्तरण होना चाहिये, तथा उनसे साधक को अधिक बलवान, पवित्र और दूसरों के प्रति उदार होना चाहिये। उनसे साधक में नयी आशा का संचार होना चाहिये, जो उसके कर्मों में परिलक्षित होनी चाहिये। सत्रहवीं सदी के महान कार्मेलाईट योगी, सन्त जॉन आफ द क्रास ने सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति के बारे में कहा है :

"वे आत्मा को असाधारण रूपसे समृद्ध करती हैं। उनमें से एक ही, एक ही बार में जीव के लिए किसी दोष विशेष को दूर करने के लिये पर्याप्त हो सकती है, जिस दोष को दूर करने के लिये उसने व्यर्थ प्रयास किया हो; तथा उसे गुणों और अतिमानवीय उपहारों से पूर्ण कर देती है।

पाश्चात्य में प्रबल कल्पनाशक्ति सम्पन्न एक महिला ने मुझे कहा कि उसे श्रीरामकृष्ण का दर्शन हुआ है। एक अन्य युवक को, जो एक लड़की से प्रेम करता था, ध्यान के समय उस लड़की के 'दर्शन' होते थे तथा उन्हें वह गलती से जगदम्बा की अभिव्यतियाँ समझता था। मुझे इन लोगों को स्पष्ट रूप से यथार्थ कहना पड़ा था कि वे लोग अपनी अति स्पष्ट कल्पना के ही शिकार हुए हैं। कई प्रकार के दर्शन होते हैं। कुछ स्पष्ट कल्पना के परिणाम होते हैं तथा केवल वैयक्तिक होते हैं। दूसरे संवेदनशील मन के द्वारा प्रत्यक्षीकृत सूक्ष्म सत्यों की बाह्य अभिव्यक्तियाँ होती हैं। उनकी उपयोगिता उनके परिणामों से निर्धारित की जानी चाहिये। हेल्युसिनेशन या दृष्टिभ्रम में अनुभव या प्रत्यक्ष के पीछे कोई सत्य नहीं होता, तथा वे रोगग्रस्त स्नायुओं अथवा विकृत मस्तिष्क के कारण होते हैं। मनोजगत् की अनुभूतियाँ,

यथार्थ होते हुए भी नित्य-परिवर्तनशील सूक्ष्म-जगत् से सम्बन्धित होती हैं, तथा उनका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं होता। इनसे विपरीत वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति में हम अपरिवर्तनशील नित्य सत्ता के सीधे सम्पर्क में आते हैं तथा वे हमारे जीवन को परिवर्तित कर देती हैं। वह हमारे चरित्र को, हमारी चेतना को, और संसार के प्रति हमारे दृष्टिकोण को परिवर्तित कर देती है। एक बार स्वामी विवेकानन्द ने एक खरी-खोटी किन्तु अत्यन्त सार्थक बात कही थी, "जो लोग यह कहते हैं कि उन्होंने श्रीरामकृष्ण को देखा है, लेकिन उनकी पवित्रता, त्याग और भक्ति के कुछ अंश को आत्मसात् नहीं किया है, उनका दर्शन मानो एक बन्दर को देखने के समान है।"

साधक को आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए उतावला नहीं होना चाहिए। जब मन प्रस्तुत होगा, तब उचित समय पर वे होंगी। तब तक साधक के लिए अपने जीवन में परिवर्तन लाना ही श्रेयष्कर है। आश्चर्यजनक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हो रही हैं, ऐसी व्यर्थ कल्पनाओं से जीवन को बर्बाद करने के बदले पवित्र, शान्त और धीर चरित्र का निर्माण करना कहीं अधिक अच्छा है। जब मैं पाश्चात्य देशों में था तो मेरी मुलाकात सुनियोजित साधना द्वारा लाभ उठाने के इच्छुक अच्छे स्त्री-पुरुषों से हुई थी। स्विट्जरलैंड वासी एक महिला में अद्भुत पवित्रता, शान्ति और आध्यात्मिक स्पन्दन थे, लेकिन वह दिवा स्वप्न देखती थी। उसका आग्रह एक घूर्णिवात में फँस गया था। उसे एक मनो-चिकित्सक के पास ले जाया गया लेकिन वह कुछ सहायता नहीं कर सका। उसने मुझे अपनी आन्तरिक अनुभूतियों के बारे में लिखा। मैंने उसे कुछ आध्यत्मिक निर्देश दिये जिनसे आश्चर्यजनक लाभ हुआ। हेग में मैं एक हालैण्ड वासी युवक से मिला जिसे तूष्णि-स्थिति का एक विचित्र अनुभव हुआ था, लेकिन उसके बाद वह नष्ट हो गया था। वह उस शान्ति को नियमित साधना द्वारा पुनः प्राप्त करने के लिए आतुर था। मैंने उसे तथा उसकी पत्नी को उचित तरीके से ध्यान करने को कहा, जिससे उन्हें बहुत लाभ हुआ।

एक अतिसुसंस्कृत महिला ने जो स्विट्जरलैंड के एक विश्वविद्यालय के प्राध्यापक की पत्नी थी, "स्वामी ब्रह्मानन्द के उपदेश" (स्पिरिचुअल टीचिंग्स ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द) पुस्तक पढ़ी थी। वह मुझसे मिली और कुछ प्रश्न किये। मैंने उसे बहुत हद तक आध्यात्मिक रुचि सम्पन्न पाया लेकिन वह जीवन की समस्याओं का सामना नहीं कर पा रही थी। मैंने उसे अपने आन्तरिक और बाह्य जीवन में सन्तुलन स्थापित करने तथा सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के समान बातों के प्रति निष्ठावान होने की सलाह दी। मैंने उसे कर्म और उपासना को एक साथ करने की तथा अपनी आत्मा को भगवन्नाम के संगीत से पूर्ण करने की सलाह दी। उसने निष्ठा-पूर्वक संघर्ष किया और उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ।

एक प्रोटेस्टेन्ट पादरी रोमा रोलाँ का "द लाइफ ऑफ रामकृष्ण" पुस्तक पढ़कर मेरे पास आया। वह आध्यात्मिक जीवन के विषय में व्यावहारिक निर्देश चाहता था, और इस विषय में बहुत निष्ठावान् था। मेरी उससे कई बार बातचीत हुई। मैंने उसे सलाह दी कि सर्वप्रथम यह पता लगाये कि वह वस्तुतः कहाँ खड़ा है, और उसके बाद मेरे द्वारा बताये सरल निर्देशों का पालन करे। उसने सहयोग किया और शीघ्र ही नयी आन्तरिक समरसता की उपलब्धि की। उसके मित्रों ने कहा कि उसके प्रवचन पहले से अच्छे हो गये हैं। कुछ लोग कहते हैं कि पाश्चात्य देशों में योग की साधना नहीं की जा सकती।

अनेक वर्षों के अनुभव के बाद मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह सत्य नहीं है। पाश्चात्य में मुझे अनेक युवकों से मिलने का सौभाग्य हुआ था जिसके मन उच्चतर स्तर पर उन्नीत हुए थे। उपयुक्त व्यक्ति से मुलाकात होने पर विश्वस्त हुए बिना नहीं रहा जा सकता। मैं ऐसे अनेक युवा व्यक्तियों से मिला जिन्होंने साधना द्वारा शान्ति और आनन्द प्राप्त किये थे। निरन्तर की गई साधना का परिणाम कोई भी व्यक्ति अनुभव कर सकता है, चाहे वह प्राच्य में हो या पाश्चात्य में। भगवान् मनुष्य की आन्तरिक लालसा देखते हैं, उसकी बाहरी पोषाक अथवा आदतें नहीं।

आध्यात्मिक अनुभूतियों के प्रकार :

आध्यात्मिक अनुभूतियों की कोई सीमा नहीं है; उनके अनन्त प्रकार हैं। इनमें से कुछ निम्न कोटि के हैं; ये सच्ची आध्यात्मिक अनुभूतियों के बदले मार्ग पर लगे सूचकों की तरह होते हैं। यदि मन समुचित रूप से सधा हो, तो अतीन्द्रिय स्पन्दनों को सुना जा सकता है। इन्हें स्थूल कर्णों से नहीं सुना जा सकता। वे मन के भीतर सुनाई देते हैं। कभी-कभी तुम दूर बज रही घंटियों की झंकार सी सुन सकते हो। वे निर्जन स्थान में विशेषकर गंभीर रात्रि में आसानी से सुनी जा सकती हैं। जब मैं मायावती में था, तब उन्हें सुना करता था। (मायावती हिमालय में स्थित है, जहाँ रामकृष्ण मिशन की मासिक पत्रिका—'प्रबुद्ध भारत' का सम्पादकीय कार्यालय है। स्वामी यताश्वरानन्द उस पत्रिका के सम्पादक के रूप में वहाँ १९२२ में तथा १९२६-७ में थे।) यहाँ विस्वाडन में भी मैं इसे सुनता हूँ। जिस प्रकार पत्थर फेंकने पर तालाब में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार कभी-कभी अन्तराकाश की गहराई से उठ रहे कुछ स्पन्दनों को अनुभव किया जा सकता है। एक विशेष प्रकार की ध्यान की स्थिति में विराट मन का चिरन्तन स्पन्दन, अनाहत ध्वनि सुनी जा सकती है।

और फिर रहस्यमय ज्योति की अनुभूति है। यह अन्तर्ज्योति चैतन्य की ज्योति है। इनमें से कुछ अनुभूतियाँ अच्छी हैं, क्योंकि वे यह बताती हैं कि तुम्हारा मन अधिक एकाग्र हो रहा है। लेकिन इन्हें अधिक महत्व नहीं देना चाहिये। यदि तुम महत्व दोगे तो तुम बँध जाओगे। तुम अपना लक्ष्य भूलकर अवान्तर आकर्षणों में आसक्त हो जाओगे। जैसा मैंने बार-बार कहा है, केवल एकाग्रता की अधिक उपयोगिता नहीं है। मात्र एकाग्रता में आध्यात्मिक विषय का अभाव भी हो सकता है। हमारा लक्ष्य आध्यात्मिक होना चाहिए। यदि हम कोई रहस्मय ध्वनि सुनें, तो हमें उसके कारण को खोजना चाहिए, यदि हम कोई ज्योति देखें तो उसके उत्स को खोजना चाहिए। परमात्मा मनोजगत् की इन सभी घटनाओं का कारण है, और वही हमारा लक्ष्य है। एक सच्चे साधक को ऐसी निम्न कोटि की अनुभूतियाँ होने पर उनको उपेक्षा करनी चाहिए, उसे उनके बारे में दूसरों से बात नहीं करनी चाहिए और इस तरह दूसरों को भी भ्रमित नहीं करना चाहिए। जप और ध्यान करते समय केवल इष्ट-देवता का चिन्तन करो, जो चैतन्य और आनन्द के विग्रह हैं। मनोजगत् के इन अनुभवों का चिन्तन मत करो।

अधिकांश साधक अपनी भावनाओं को केन्द्रित करने के लिए एक ईश्वरीय स्त्री अथवा पुरुष विग्रह के बिना ध्यान नहीं कर सकते। उन्हें ईश्वर के रूप से प्रारम्भ करना चाहिए तथा उसकी कल्पना में स्पष्ट तथा चैतन्य देखना चाहिए। रूप हममें दैवी गुणों को जाग्रत करता है, और ज्यों-ज्यों हमारा ध्यान गहरा होता जाता है, त्यों-त्यों, हम इष्ट देवता की चेतना के संस्पर्श में आने

लगते हैं। इष्ट देवता में हम व्यष्टि और समष्टि चेतना के बीच की कड़ी पाते हैं। उसके बाद हम उसी कड़ी को अपने भीतर प्राप्त करते हैं। बाद में हमारी चेतना व्यापक होने लगती है, और हम व्यष्टि को समष्टि की अभिव्यक्ति समझने लगते हैं। अन्त में व्यष्टि और समष्टि परम सत्ता में विलीन हो जाते हैं, जो एकमेवाद्वितीयम् कहलाती है।

बाद में, और प्रगति करने पर जो निराकार, साकार के रूप में अभिव्यक्त होता है, वही हमारी अनुभूतियों का केन्द्र हो जाता है। हम अपनी आत्मा तथा अन्य सभी की आत्माओं को एक अखण्ड चैतन्य की अभिव्यक्तियों के रूप में अनुभव करने लगते हैं। हम सभी प्राणियों में परमात्मा का दर्शन करते हैं तथा सभी प्राणियों की सेवा करने की गहरी आन्तरिक प्रेरणा का अनुभव करते हैं। अपने में नैतिक द्वन्द्व पैदा किये बिना हम सभी के प्रति गहरे प्रेम और करुणा से पूर्ण हो जाते हैं।

सर्वप्रथम हम विराट स्पन्दनों के संस्पर्श में आते हैं, उसके बाद विराट मन के संस्पर्श में आते हैं और फिर हम अपनी सीमित चेतना और अनन्त चैतन्य के संस्पर्श का अनुभव करते हैं। एक दृष्टिकोण से ये सब एक के भीतर एक समकेन्द्रित वृत्त के समान हैं। हम विचारों के स्तर पर जी सकते हैं, हम अपनी तथा दूसरों की देहों को विचार मात्र में पर्यवसित कर सकते हैं। हम इन वैचारिक रूपों को भी शान्त करके निर्गुण निराकार के स्तर तक पहुँच सकते हैं तथा परम शान्ति और धन्यता का अनुभव कर सकते हैं।

किसी भी आध्यात्मिक अनुभूति की सत्यता तीन प्रकार से प्रमाणित की जानी चाहिए।

(१) अपनी स्वयं की अनुभूति की पुनः पुनः प्राप्ति द्वारा सत्यापन।

(२) अपनी स्वयं की अनुभूति की गुरु उसके कथन के साथ तुलना करके सत्यता प्रमाणित करना।

(३) अपनी अनुभूति की सत् शास्त्रों के कथन से तुलना करके सत्यता प्रमाणित करना।

यदि हम ये सत्यापन न करें तो आत्म-प्रवंचना की बहुत बड़ी संभावना है, और हमारी अनुभूतियाँ, हमारे अनियन्त्रित मन की खतरनाक कल्पनाएँ बन सकती हैं।

जब तक हममें देहात्म बोध है, तब तक हमें स्थूल जगत् के साथ तादात्म्य स्थापित रखना चाहिए; जब हम मानसिक स्तर पर हों, तब हमें विराट मन के साथ तारतम्य बनाये रखना चाहिए: और जब हम आध्यात्मिक स्तर पर आरोहण करें, तो हमें परमात्मा के साथ एक रस होना चाहिए। उच्चतर स्तरों पर हम जिस प्रकाश, आनन्द और समरसता का अनुभव करते हैं, उन्हें निम्न स्तरों पर अभिव्यक्त करना चाहिए। तब हम जगत् कल्याण के लिए दिव्य शक्ति, ज्ञान और आनन्द के मार्ग बन जाते हैं।

जो दूसरों का सहारा ढूँढ़ता है, वह सत्यस्वरूप भगवान् की सेवा नहीं कर सकता।

—स्वामी विवेकानन्द

आध्यात्मिक जीवन का मर्म

—ब्रह्मलीन स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज
पूर्व महाध्यक्ष; रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

प्रश्न—तो फिर भक्ति का जीवन में कुछ महत्त्व है या नहीं ?

उत्तर—हाँ, जो लोग वेदान्त ज्ञान के बारे में बिना सोचे भी अन्य मार्ग – भक्तिमार्ग पर चलते हैं, भगवान का अनुसरण करते हैं, भगवान के प्रति भक्तिभाव और प्रेम रखते हैं, भगवत्परायण जीवन बिताने के लिए प्रयास करते हैं, उन लोगों को भी उतना ही फायदा होता है जितना ज्ञानमार्ग पर चलनेवालों को होता है। एक मात्र ईश्वर के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है, यह भक्तिमार्ग पर बढ़नेवाले लोगों के मन में धीरे-धीरे दृढ़ होता है। मेरे भीतर भी ईश्वर है, मेरे बाहर भी ईश्वर है। उस एक ही तत्त्व पर सब कुछ आधारित है। इस प्रकार कोई भक्तिभाव से ईश्वरमय बन जाए, या वेदान्त विचार से ऐसा हो, फल तो एक ही है न ? सर्वत्र प्रभुदर्शन प्राप्ति से उस मनुष्य के बंधन, उसकी संकीर्णता, उसके मन की अनेक-विघ्न चिन्ताएँ और उसका दुःख भोगना—ये सभी मिट जाएगें। यह भक्ति का फल है। वेदान्त 'ब्रह्म सत्य' का विचार करता है और भक्त 'ईश्वर सत्य' का विचार करता है। भगवान ही सत्य है और अन्य सब कुछ उसकी लीला ! इस प्रकार सभी मार्गों का उद्देश्य तो एक ही है।

हमारे वेदान्त केन्द्र, इस सर्वजनोपयोगी वेदान्त को व्यवहार में रखने का प्रयास करते हैं। समय मर्यादा के कारण इस विषय में अधिक कह नहीं सकता। लेकिन संक्षेप में—हम विचार-मार्ग या भक्तिभाव-मार्ग से—किसी भी मार्ग अपनाएं उद्देश्य तो एक ही है। हमारे अंदर बैठा हुआ अहंभाव को—मैंपन को दूर करना। श्रीरामकृष्ण कहते हैं "यदि अहं बिलकुल दूर न हो, तो उनका 'दास अहं', 'भक्ति अहं' इस प्रकार चिंतन कीजिए।" ऐसा करने से भी फायदा तो वही होगा कि अन्त में वह 'अहंभाव' निकल जायेगा। और उसकी जगह 'तू', ईश्वर परमात्मा—ब्रह्म ही रहेगा। सिर्फ इतना ही।

प्रश्न—वेद में सभी जीवन-प्रवृत्तियाँ हैं। बाइबल, कुरान आदि भी ईश्वर की ओर निर्देश करते हैं। तो क्या इन्हें वेदवाणी में गिन सकते हैं ?

उत्तर—'वेद' शब्द की दो तरह से व्याख्या हो सकती हैं। स्वामी जी कहते हैं कि 'वेद' अर्थात् ज्ञान। संस्कृत के 'विद्' धातु से यह शब्द निष्पन्न हुआ है। यह ज्ञान ऐसा है कि जो 'नित्य' है। इस प्रकार नित्यज्ञान अर्थात् 'वेद'। इसलिए 'वेद' की 'नित्य' में गणना होती है। इस प्रकार स्वामी जी की दृष्टि से ऐसा 'नित्यज्ञान' चाहे जहाँ भी हो, फिर भी उसे 'वेद' मान सकते हैं। स्वामी जी के मत से नित्य, सनातन ज्ञान-राशि का अर्थ ही है 'वेद'। इस 'वेद' के सनातन ज्ञान का कोई लेखक नहीं है, कोई रचयिता नहीं है। भले ही उसमें ऋषियों के नामोल्लेख हों, लेकिन वे इन वेदों के लेखक हैं ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं हुआ है। ऐसे ऋषियों के नाम केवल शब्द ही हैं। किसी विषय-चर्चा प्रारंभ करने के लिए ऋषियों के नामों का उल्लेख मात्र ही किया गया है। ऐसा ही है

इसलिए तो 'वेद' नित्य माने गये हैं। इस प्रकार स्वामी के दृष्टिकोण से 'ज्ञानमात्र' अर्थात् 'वेद' है।

परन्तु प्राचीन रूढ़िग्रस्तों द्वारा 'वेद' शब्द की एक दूसरी व्याख्या की गई है। वे कहते हैं कि 'वेद' अर्थात् संस्कृत में लिखित ग्रंथ विशेष। संस्कृत भाषा में लिखे हुए ग्रंथ-विशेष की 'शब्द-राशि' को वे 'वेद' की संज्ञा देते हैं। और ऐसा आग्रह रखते हैं कि उन शब्दों में जरा-सी भी हेराफेरी हो तो वह 'वेद' नहीं कहलायेगा। वेद में 'प्र तो ब्रवीमि' (मैं तुम्हें कहता हूँ।) ऐसा लिखा हो उसके बदले यदि कोई 'ते प्र ब्रवीमि' कह दे तो वह 'वेद' नहीं माना जायेगा। क्योंकि उसके शब्दों में परिवर्तन हुआ है। यह 'वेद' की पुरानी व्याख्या है। किन्तु वह हमें कुछ अधिक रसप्रद नहीं लगती। कारण यह कि "शब्द नित्य है।"—यह बात भी अति प्राचीन ही है। और ऐसी 'शब्द राशि' को ही 'वेद' मान लेना, यह भी योग्य नहीं लगता। इस पर से बौद्धिक दृष्टि से स्वामी जी ने की है वह 'वेद' की प्रथम व्याख्या उपयुक्त लगती है। 'शब्द राशि' नहीं किन्तु 'ज्ञान राशि' अर्थात् 'वेद'।

अब इस प्रकार देखा जाए तो यह 'ज्ञान राशि' कुरान में भी हो या अन्य ग्रंथ में भी। लेकिन हमें देखना यह है कि 'कुरान' की 'उत्पत्ति' हुई है क्या? उत्तर प्राप्त होता है कि कुरान की 'उत्पत्ति' हुई है। क्योंकि पैगंबर को कुरान 'ग्रंथ' मिला था। इस प्रकार की 'कुरान' ग्रंथ की उत्पत्ति की बात हमारी समझ में नहीं आती। उसकी उत्पत्ति का बयान किसी जगह नहीं है। क्या इष्टदेव ने इसे लिखकर पैगम्बर को दिया? यदि ऐसा मान लें, तो प्रश्न ये उपस्थित होते हैं कि क्या ईश्वर लिखेगा सही? लिखे तो किस प्रकार से? क्या हाथ से? किस भाषा में लिखेगा? कैसे अक्षर होंगे? इन प्रश्नों के उत्तर इनसे नहीं मिलते। और यदि कुरान 'नित्य' है तो फिर पैगम्बर से पहले कुरान कहाँ था? इस दृष्टि से कुरान ग्रंथ 'नित्य' है ऐसा नहीं कह सकते। किन्तु हां, उसमें जो 'ज्ञान' दर्शाया गया है, वह नित्य हो सकता है। वेद में भी जो ज्ञानराशि है वही 'नित्य' है। वेदों में और भी काफी बातें हैं। जैसे यज्ञ कैसे करना, कैसे कैसे उद्देश्यों के लिए किन किन अलौकिक उपायों का आयोजन करना आदि सब कुछ इसमें है। उसमें 'ज्ञानराशि' के साथ-साथ उपाख्यान भी दिये गये हैं। लेकिन यह सबकुछ 'नित्य' है, ऐसा तो नहीं मान सकते। इन सभी को सिर्फ उदाहरण स्वरूप, दृष्टान्त के रूप में, कथा के समान ही माने तो ही उसका अर्थ समझ सकते हैं। उसी अर्थ में ग्रहण करें तो ही 'वेद' 'नित्य' है ऐसा माना जा सकता है।

प्रत्येक की अपनी निजी विशेषता होती है। इसलिए कुरान की गणना 'वेद' में नहीं कर सकते। कुरान 'कुरान' ही है, 'वेद' वेद है, और बाइबल 'बाइबल' है।

बाइबल तो इशु के समय का है। प्राचीन काल में किसने लिखा? उसमें लिखा है कि—"God created the world in seven days"—"सात दिनों में ईश्वर ने सृष्टि की रचना की।" छः दिन के बाद वे थक गए और फिर एक दिन विश्राम लिया। ऐसा कह सकते हैं कि ये बातें भी अति पुरानी हैं। बच्चों को समझाने की बातें! बुद्धिशाली के गले ये बातें नहीं उतरतीं यद्यपि उसमें स्वाभाविक ज्ञान की बातें भी अधिक हैं। उन सभी बातों पर विश्वास करना चाहिए। उन बातों को अक्षरशः मानना भी चाहिए। फिर भी आधुनिक विज्ञान से विरोधी बातें आजकल कोई नहीं मानता अब तो ख्रिस्ती भी ऐसी बातें मानते नहीं हैं। अर्थात् ऐसा अब नहीं लगता कि

बाइबल में लिखा हुआ सबकुछ—अक्षरशः मान ही लेना चाहिए। किन्तु हाँ, उसमें जो 'नित्यज्ञान' के अंश हैं, वे अवश्य ही उपादेय हैं। कुरान में भी जो भावनाएँ मानव के लिए सर्वदा कल्याणकारिणी हैं, उनका स्वीकार करना चाहिए। बाइबल के लिए भी वही और वेदों के लिए भी ऐसा ही किया जाए! देखिए न, वेदों के यज्ञयाग अब कौन करता है? अब उसे कैसे किया जाए? अब तो वह असम्भव ही है। अर्थात् जिस समय जो उपयोगी हो, उसे ही स्वीकारना चाहिए। अर्थात् इससे अब 'नित्यज्ञान राशि' का अर्थ स्पष्ट होगा, 'नित्यज्ञान राशि' का अर्थ ऐसा नहीं होता कि उसमें दर्शाई गई सभी वस्तुएं 'नित्य' और मंगलकारी है।

यह 'नित्यज्ञान राशि' को 'बाइबल की वाणी' 'वेद वाणी' या 'कुरान की वाणी' ऐसे शीर्षक प्रदान करना भी उचित नहीं है; क्योंकि उसमें जो एक सनातन, शाश्वत तत्त्व है, जिसे तुम मानते हो, वह तो एक ही है। फिर भले ही आप उसे वेद कहें कुरान कहें या कुछ भी नाम दे दें, उससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। नाम भले ही 'वेद', 'कुरान', 'बाइबल' जैसे अलग-अलग हों, भले ही इनके कुछ विशिष्ट तत्त्वों की बात अलग-अलग ढंग से की गई हो, काफी असमानताएँ दृष्टिगोचर हों, लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं कि 'वेद' 'कुरान' हो जाएगा, या 'कुरान' वेद बन जाएगा। सभी की निजी विशिष्टता कायम रखकर ही इस सभी से जो कुछ भी सत्य है, मंगलकारी है, उसे ही अपनाना चाहिए; उसमें कुछ हर्ज नहीं।

प्रश्न—जो राम, जो कृष्ण वही अब श्रीरामकृष्ण' यह वेदान्त दृष्टि तो नहीं है, तो फिर वेदान्त दृष्टि क्या है?

उत्तर—वेदान्त की दृष्टि से ब्रह्म एक ही है और वही सर्व जीवरूपों में प्रकाशित होता है। हम खुद को दूसरों से अलग मानते हैं; लेकिन हकीकत में केवल ब्रह्म ही प्रत्येक वस्तु में प्रकाशित हो रहा है। इसलिए हम सभी ही ब्रह्म हैं। इस दृष्टि से राम भी ब्रह्म हैं और कृष्ण भी ब्रह्म ही हैं। श्रीरामकृष्ण भी ब्रह्म हैं और यदु, मधु आदि सभी ब्रह्म ही हैं। यह वेदान्त की दृष्टि है। और 'जो राम और, जो कृष्ण—ऐसा भेद दर्शाए यह वेदान्त की दृष्टि नहीं है। यह एक दूसरी ही दृष्टि है, व्यक्ति दृष्टि है। जो 'राम व्यक्ति' है अथवा जो 'कृष्ण व्यक्ति' है, वह व्यक्ति कोई दूसरा व्यक्ति हो सकता है। इसलिए इन दोनों के बीच फर्क है। किन्तु यह 'राम व्यक्ति' और 'कृष्ण व्यक्ति' में जो तत्त्व हैं, वह एक ही है, कारण कि राम और कृष्ण अवतार-पुरुष थे। ऐसे ईश्वरी पुरुषों के सिवा दूसरे मानवों की 'अवतारी' में गिनती नहीं की जाती। क्योंकि अवतार पुरुषों के प्रकाश में और अन्य मानवों के प्रकाश में काफी अन्तर होता है। ये दोनों प्रकाश अलग-अलग प्रकार के हैं।

सामान्य आदमी में ईश्वरी प्रकाश नहीं होता। अवतार पुरुष में ईश्वर का प्रकाश होता है। भागवत में भगवान के असंख्य अवतार दर्शाये हैं: "अवताराघ्नसंख्येयाः"—"भगवान के अवतार असंख्य हैं।" इनकी गणना नहीं की जा सकती।

प्रश्न—"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः" —इन शब्दों का अर्थ क्या है?

उत्तर—इन शब्दों का अर्थ है कि गुरु मानव नहीं होता, लेकिन वह तो स्वयं परमेश्वर ही होता है। अर्थात् परमेश्वर खुद ही गुरु है। उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, परब्रह्म किसी भी नाम से पुकारो। वह परमेश्वर है। वही गुरु है और गुरु को प्राप्त करने के लिए अथवा तो इस गुरु से मार्ग-दर्शन पाने के लिए हम मानव गुरु का आश्रय लेते हैं। क्योंकि हम साक्षात् परमेश्वर से सीधा मार्ग-दर्शन

ग्रहण नहीं कर सकते। भगवान के साथ हमारा संबंध बंधा नहीं है, इसलिए हम किस प्रकार उनसे मार्गदर्शन पायें, यह न समझ सकने से मानव गुरु के माध्यम से मनुष्य ऐसा मार्गदर्शन पाने के लिए जाता है। इसलिए मानव गुरु के प्रति भी 'वह परमेश्वर है' ऐसी दृष्टि रखनी चाहिए। सच तो यह है कि मानव मात्र अपूर्ण ही है। एक अपूर्ण व्यक्ति दूसरे अपूर्ण व्यक्ति को भला कैसे आगे बढ़ा सकता है? "अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः"— एक अन्धा आदमी दूसरे अन्धे को रास्ता दिखाकर ले जाए, यह तो सम्भव है ही नहीं। एक अपूर्ण मानव दूसरे अपूर्ण मानव को राह दिखाकर भगवान के पास कैसे ले जा सकता है? इसलिए शास्त्रों में कहा गया है कि "गुरु में ईश्वर दृष्टि रखना, मानव दृष्टि नहीं।" इनसे दो फल प्राप्त होते हैं – एक शिष्य की या भक्त की गुरु के प्रति असीम श्रद्धा से गुरु में दिव्य शक्ति का विकास होता है और दूसरा शिष्य-भक्त की ऐसी श्रद्धा से गुरु की अनुभूतियों और गुरु के उपदेशों से शिष्य-भक्त के मन में बस जाते हैं; और फलदायी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार गुरु के प्रति ईश्वर दृष्टि जरूरी है। गुरु की न्यूनताओं के प्रति ध्यान नहीं देना चाहिए; क्योंकि मनुष्य मात्र में न्यूनता तो होगी ही। किन्तु गुरु में जो ईश्वरी-शक्ति, ईश्वरी प्रकाश निहित है, उसके प्रति ध्यान दें, तो वह दिव्य शक्ति हमें अधिक फल देती है। और हम साधना के मार्ग में काफी प्रगति कर सकते हैं। गुरु में ईश्वर दृष्टि रखने से गुरु में उस शक्ति का विकास होता है और शिष्य-भक्त में ग्रहण शक्ति बढ़ती है। उपरोक्त शब्दों का यही अर्थ है।

प्रश्न – रामकृष्णदेव के प्रणाम मंत्र में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :—

"ॐ स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतार वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः॥"

इनका स्पष्टार्थ क्या है?

उत्तर—इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट ही है। इसमें श्री रामकृष्ण का वर्णन है। वे धर्म स्थापक हैं। सर्व धर्म स्वरूप हैं और अवतारों में श्रेष्ठ हैं। धर्म के स्थापक माने? अवतार अवतरित होकर अपने जीवन एवं वाणी से धर्म प्रतिष्ठित करते हैं। अन्य अवतारों की तरह श्री रामकृष्णदेव ने भी ऐसा ही किया, इसलिए उन्हें धर्म के स्थापक कह सकते हैं। दूसरा 'सर्वधर्म स्वरूप'—उन्हें सर्वधर्म स्वरूप इसलिए कहा गया है कि अलग-अलग धर्मों की साधना करके श्री रामकृष्णदेव ने देखा कि तत्त्व तो एक ही है। विभिन्न धर्मों के अनुयायिओं ने श्री रामकृष्णदेव में अपने-अपने आदर्श और अपने-अपने इष्टदेवों को देखा है। इसलिए श्री रामकृष्णदेव को 'सर्वधर्म स्वरूप' कहा जाता है। यह बात हम उनके जीवन चरित्र से भी जान सकते हैं। भक्त मथुरानाथ को श्री रामकृष्णदेव में अपनी इष्टदेवी काली माँ एवं भगवान शंकर के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। वैष्णव संन्यासी जटाधारी ने श्री रामकृष्ण में अपने आदर्श बाल रामचन्द्र को प्रत्यक्ष निहारा। जिन्हें श्री रामकृष्ण 'गोपाल की माँ' कहकर संबोधित करते थे, उस अघोरमणि ने भी श्री रामकृष्णदेव में अपने इष्टदेव 'बाल गोपाल' के प्रत्यक्ष दर्शन किये थे। इसी प्रकार हिन्दू धर्म के कई उपासकों को भी श्रीरामकृष्णदेव में अपने-अपने इष्टदेव दृष्टिगोचर हुए। इस दृष्टि से श्री रामकृष्णदेव को 'सर्वधर्म स्वरूप' कह सकते हैं।

तीसरी बात है 'अवतार वरिष्ठ' की। किसी मानव के मन में कदाचित आशका हो कि उन्हें 'अवतार वरिष्ठ' क्यों कहा गया? दूसरे अवतार क्या निम्न कोटि के हैं? यहाँ यह बात हमें याद रखनी चाहिए कि 'अवतार' अर्थात् 'ईश्वर'। इसलिए एक अवतार से दूसरा अवतार कभी

अलग हो सकता है ? ऐसा तो है ही नहीं। अर्थात् सभी अवतार एक ही ईश्वर के अवतार हैं, इसमें कुछ भी भेद नहीं है। फिर भी उन उन अवतारों के कार्य, जीवन कार्यों में और कार्यक्षेत्र में अन्तर नजर आता है। प्रत्येक अवतार का अपना विशिष्ट कार्य होता है। जैसे कि मत्स्यावतार का वेदों के उद्धार का कार्य, कूर्मावतार का जगत को पाताल से बाहर निकालने का कार्य आदि। शास्त्रों में इन अवतारों का अन्य किसी कार्य का उल्लेख नहीं है। उन अवतारों के जीवन चरित्र का या उनके उपदेशों का या मानव को ईश्वर की ओर ले जाने के कार्य का कोई खास उल्लेख हमें उनसे नहीं मिलता। एक बात निश्चित है कि अवतार जब भी अवतरित होते हैं, जगत में तत्काल जो समस्याएँ हैं, उन समस्या का समाधान उस अवतार से मिल जाता है। और हर बार संसार की समस्या एक समान होती नहीं, एक बार एक, दूसरी बार दूसरी होती है। इसलिए इन सभी समस्याओं का समाधान एक अवतार से होता नहीं। अलग-अलग अवतारों के कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न होते हैं; क्योंकि तत्कालीन आवश्यकतानुसार ही अवतार अवतरित होते हैं।

इस प्रकार कार्यक्षेत्र की दृष्टि से अवतारों में फर्क हो जाता है। अवतार कार्य अर्थात् अवतारों का शक्ति-प्रकाश। शक्ति तो सभी अवतारों में होती ही है। किन्तु 'शक्ति प्रकाश' का अनुभव करके ही शक्ति का मूल्यांकन किया जा सकता है। शक्ति कारण है, प्रकाश उसका कार्य है। प्रकाश भले ही समान हो, कम या अधिक होने का कोई कारण भी नहीं। यह जरूरी भी नहीं। लेकिन वह प्रकाश विभिन्न युग का होता है। जिस समय, जिस प्रकार के प्रकाश की आवश्यकता हो, वह प्रकाश उस अवतार में दिखता है। इस दृष्टि से प्रत्येक अवतार में अन्तर हो जाता है और इस दृष्टि से देखने पर, उसका जिस समय आविर्भाव हुआ हो, उस समय समस्याओं का अन्त नहीं था। उन तमाम समस्याओं का समाधान हमें श्री रामकृष्णदेव के जीवन से मिलता है। एक दूसरी बात। जिस समय श्री रामकृष्णदेव का आविर्भाव हुआ उस समय समग्र संसार मानो एक परिवार समान हो गया था। वैज्ञानिक साधनों की सहायता से सर्व मानवीय गतिविधियों का अवलोकन सहज और सर्वगामी हो गया था। श्री रामकृष्ण देव का प्रभाव कम समय में समग्र विश्व में जिस रीति से फैल गया, उस रीति से दूसर किसी भी अवतार में फैला हो, ऐसा इतिहास में नहीं है। इस दृष्टि से उनकी गिनती 'श्रेष्ठ' में हो सकती है। तात्विक दृष्टि से सभी अवतारों में कुछ भी अन्तर नहीं है। सभी अवतार ईश्वर ही है, किन्तु ईश्वर खुद 'शक्ति प्रकाश' अलग-अलग ढंग से, अलग-अलग तरीके से दर्शाते हैं। ईश्वर से ही ऐसा हो सकता है। यदि इस प्रकार हम व्यापकता की दृष्टि से देखें तो श्री रामकृष्णदेव के जीवन में इतनी व्यापकता थी, विश्व में स्वल्प समय में वे व्यापक हो गए। ऐसा किसी अवतार में हुआ नहीं है। इस दृष्टि से उन्हें 'अवतार वरिष्ठ' कह सकते हैं।

प्रश्न—काम, क्रोध आदि दूर करने का उपाय कौन-सा है ?

उत्तर—काम, क्रोध आदि मनुष्य में स्वभावतः होते ही हैं। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं कि जिसमें यह न हो। इसलिए गीताजी में कहा है :—

"शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीर विमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखो नरः॥"
(गीता ५-२३)

—"जो मनुष्य शरीर त्याग होने से पूर्व ही काम, क्रोध से उत्पन्न हुए वेग को सहन करने में समर्थ है, वही योगी कहलाता है। वही मनुष्य सुखी

होता है।" किन्तु काम, क्रोध को सहना अर्थात् क्या ? अर्थ इतना ही कि उससे विचलित न होना। काम, क्रोध का आवागमन सहते रहना, ऐसा नहीं। उसे काबू में रखना—ऐसा अर्थ है। उससे चलित नहीं होना। जो ऐसा कर सके वह 'योगी' कहलाता है। परन्तु उसे काबू में कैसे रखें ? मैं फिर से कहता हूँ कि अभ्यास से और वैराग्य से। इसके सिवा कोई साधारण मार्ग नहीं है। काम, क्रोध को ज्ञानपूर्वक तुच्छ वस्तु मानने का एक अन्य उपाय है। सूझ-बूझ से यह बात मन में रख दें तो ऐसी तुच्छ वस्तु की ओर मन आकृष्ट ही नहीं होगा। ऐसे ज्ञानी में काम, क्रोध के उद्भव की संभावना ही नहीं रहती। और भी एक अन्य मार्ग है वह सिर्फ श्री रामकृष्ण ने दर्शाया है। श्री रामकृष्णदेव कहते हैं—'यदि सक्कर मिले तो गुड़ की ओर मन नहीं दौड़ेगा ! अच्छा पैड़ा मिले तो काजू के प्रति कौन ललचायेगा। इस प्रकार एक ऊर्ध्व वस्तु की ओर मन का आकर्षण हो, तो निम्न वस्तु के प्रति आकर्षण नहीं रहेगा। इसलिए भगवान के प्रति जितना मन खिंचेगा, उतना संसार के तुच्छ विषयों से वह अपने आप हट जाएगा।"—यह भी उपाय है। अभ्यास-वैराग्य उपरांत यह आगे दर्शाये दोनों मार्गों में प्रथम मार्ग विधेयात्मक है; और दूसरा निषेधात्मक है। एक त्याग का मार्ग है और दूसरा उच्चतम (श्रेष्ठ) के प्रति आकर्षण का है। इन दोनों उपायों से भी मन से काम-क्रोध दूर किये जा सकते हैं।

प्रश्न—श्री गुरुदेव के ध्यान में बैठते समय तो दिव्य-दर्शन होता है। परन्तु स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकों में दर्शाया है कि उसकी कुछ कीमत नहीं तो इस बारे में आप मार्गदर्शन करेंगे ?

उत्तर—ऐसे अलौकिक दर्शन का खुद का कुछ मूल्य नहीं होता। यदि ऐसे दर्शन मनुष्य के जीवन में परिवर्तन लाते हैं तो ही उस दर्शन को सच्चा मान सकते हैं। वर्ना दर्शन तो मन में तरह-तरह के होते हैं। अति साधारण आदमी भी कहता है कि "मैं राम को देखता हूँ, मैं कृष्ण को देखता हूँ, मैं काली को देखता हूँ।" लेकिन जीवन तो वह बिलकुल साधारण ही जीता है। ऐसे दर्शनों का बिलकुल अर्थ नहीं है। दर्शन करनेवाले के जीवन में दर्शन से कितना परिवर्तन हुआ उस पर से दर्शन का अर्थ तय किया जाता है। इसलिए सिर्फ दर्शन पर अधिक आधार रखने की जरूरत नहीं है। मन के विचारों की अवधारणा ही ऐसे दर्शनों को साकार करती है। इसलिए तो उसे स्वप्न की तरह 'निर्जन' कहते हैं। कोई कहता है कि "स्वप्न में आकर शिवजी मुझे ऐसा-ऐसा कह गए" ऐसे लोगों को मैं कहता हूँ कि "स्वप्न में आकर तुम्हारे भैया तुम्हें कह जाए, फिर जाग कर तुम तुम्हारे भैया के पास जाकर पूछ लो कि उसने तुम्हें क्या कहा था ? एक बहन ने मुझे कहा कि 'आपने मुझे स्वप्न में दीक्षा दी है. तो कौन-सा मंत्र दिया है ? मैंने उसे उत्तर में कहा कि "तुमने स्वप्न देखा है, लेकिन मैंने तो कुछ स्वप्न में देखा नहीं है। उस स्वप्न में यदि मैं भी तुम्हारे साथ होता तो कहता कि मैंने कौन-सा मंत्र दिया था ?" इससे ख्याल आता है कि स्वप्न को सच मान लेने से कैसी विभ्रान्ति उठ खड़ी होती है। और हरएक स्वप्न यदि मिथ्या हो तो उ में से ही किसी एक को सच्चा कहना कठिन है।

यों तो स्वप्न-मात्र मिथ्या है फिर भी, कभी-कभी ऐसी मिथ्या वस्तु की सत्य के साथ मिलावट हो जाती है। उसका कारण 'दैवात्' है। वह accidental ही है। उसे 'दैवात्' कहा जाता है। उसका अर्थ कहीं "मैंने देखा वह सच था" ऐसा नहीं होता। यह तो सिर्फ सादृश्य। कई बार तो हमारा मन ऐसे सादृश्य को परख भी लेता है। और कहता है कि 'मैंने जो देखा है वैसा कुछ

होता तो नहीं। स्वप्न तो आखिर स्वप्न ही है, परन्तु स्वप्न का एक अन्तर ध्यान में रखना चाहिए। देखो, स्वप्न यदि अच्छा हो, उदाहरणार्थ देव-स्वप्न, गुरु स्वप्न या कोई उच्च आदर्श प्रेरक स्वप्न हो, तो ऐसा स्वप्न मनुष्य के मन में अच्छे संस्कार जागृत करते हैं। इस प्रकार ऐसे स्वप्न उपयोगी एवं कल्याणकारी है। लेकिन इसका अर्थ ऐसा नहीं कि स्वप्न सच्चे हैं, ऐसा नहीं ही कहना चाहिए। स्वप्न का अर्थ ही 'जो सच्चा नहीं वह' ऐसा होता है। शंकराचार्य महाराज ने एक दृष्टान्त दिया है: किसी आदमी ने स्वप्न देखा कि सिंह ने उसपर आक्रमण किया। उस आदमी के मन में घबराहट उत्पन्न हुई इतने में वह जग गया। किन्तु उसकी स्वप्न में अकुलाहट से जो हृदय की धड़कने बढ़ गई थीं वही जागृत अवस्था में भी गतिशील रही। इस प्रकार वह स्वप्न तो स्वप्न ही था लेकिन हृदय की धड़कने सच्ची ही थीं। इस पर से स्वप्न का मिथ्या तत्त्व समझ सकते हैं।

प्रश्न—हम अपनी साधक अवस्था में ईश्वर की ओर बढ़ रहे या नहीं? यह किस तरह जान सकते हैं?

उत्तर—यह अत्यन्त आवश्यक प्रश्न है। मनुष्य के मन में ऐसी आशंका उत्पन्न हो, यह स्वाभाविक है। कुछ लोगों को अपने स्वप्न में अति अलौकिक दृश्य दिखाई देते हैं। वही ईश्वर की ओर कुछ आगे बढ़ने का चिह्न है, ऐसा समझते हैं। कुछ लोग तो जागृत अवस्था में या ध्यान में होने वाले ऐसे दर्शनों को, ऐसा चिह्न समझते हैं। ऐसी स्थितिमें हमेशा आशंका होती ही है! लेकिन इसे जानने के लिए भागवत में स्पष्ट शब्दों में सुन्दर रीति से दर्शाया गया है:

"भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र
चैष त्रिकएक कालः
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युः तुष्टि पुष्टिः
क्षुद्रायोऽनुघासन्।"

एक भूखा मनुष्य है और उसे भूख के कारण तकलीफ है, असंतोष, उसे अशक्ति आ गई है। अब यदि तुम उसे खाना दो और वह खाना शुरू करे तो प्रत्येक निवाले से उसकी भूख की तकलीफ धीरे धीरे कम होती जाती है। उसके शरीर में शक्ति आने लगती है। उसमें बल आने लगता है। उसके मन का असंतोष दूर होता है। उसमें तीन वस्तुएँ हैं: संतुष्टि, तुष्टि और पुष्टि। भूख की तकलीफ इन तीनों वस्तु से दूर हो जाती है। इसी प्रकार कोई मानव भगवान को शरण ग्रहण करे, तब उसे तीन वस्तुएँ एकसाथ प्राप्त होती हैं। 'प्रपद्यमान' हो तो एक साथ तीन वस्तु संपन्न होती हैं: एक भक्तिः अर्थात् भगवान के प्रति अनुराग। दूसरी वस्तु है परेशानुभवः अर्थात् भगवान के प्रति मन की असंदिग्धता-स्पष्टता और तीसरी वस्तु 'विरक्तिः अन्यत्र' अर्थात् भगवान के सिवा अन्य वस्तुओं के प्रति अनुराग-आकर्षण न हो वह। सुवर्ण की सच्चाई परखने के लिए जैसे निकष (बंगाली कष्टि पाथर) पर उसे घिसा जाता है, वैसे ये तीन वस्तुएँ ईश्वर के प्रति आगे बढ़ने की सच्चाई के मानदंड हैं। भक्ति-भगवान के प्रति अनुराग बढ़ता कि नहीं? दूसरा भगवान के प्रति असंदिग्धता-संशयाभाव-स्पष्टता है कि नहीं? और तीसरा, अन्यत्र विरक्ति-अन्य विषयों में से मन का आकर्षण दूर हुआ क्या?

इन तीन वस्तुओं से तुम्हें आप ही पता चलेगा कि तुम ईश्वर की ओर आगे बढ़ते हो? इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

अधिक स्पष्टता के लिए दृष्टान्त रूप में कह सकते हैं कि कोई आदमी भगवान का नाम स्मरण करे, तब उसकी आँख में आँसू निकलते हैं और उसे अतिशय आनंद हुआ हो ऐसा दिखता है।

दूसरे लोग यह देखकर समझेंगे कि यह तो बहुत श्रेष्ठ भक्त है। लेकिन विषय उपस्थित हो तब विषय की ओर—विषय में—उसका इतना ही आकर्षण हो तो उसके आँसू सच्चे नहीं और यदि किसी को ऐसा हो तो कि विषय की ओर आकर्षण नहीं है, भगवत् वस्तु के प्रति भी आकर्षण नहीं है। तो ऐसे मनुष्य का जीवन विभ्रान्त है। Frustrsted life है। उसे किसी वस्तु के प्रति आकर्षण नहीं है। इसलिए वह कहता है कि मुझे कोई भी वस्तु पसंद नहीं है। यह तो दुःखमय जीवन है। कोई भी वस्तु पसंद न आये, उसे वैराग्य नहीं कहते। अर्थात् जो वैराग्य हमें ईश्वर की ओर न ले जाए, किन्तु ईश्वर की ओर जाने में ही मन में वैराग्य उत्पन्न करे, तो ऐसा वैराग्य वैराग्य नहीं है। अर्थात् दर्शायी गयी तीनों वस्तुएँ एक साथ हो, तो वह सच्चा वैराग्य माना जाएगा। यदि विषयों के प्रति वैराग्य न जागे, तो ईश्वर की ओर आगे नहीं जाया जायेगा, प्रगति नहीं होगी। यदि ईश्वर भक्ति न हो, तो चाहे जितनी भी पूजा, पुरश्चारण, शास्त्र-पाठ करो, सब कुछ व्यर्थ है; और आगे बढ़ा नहीं सकते। तो इस प्रकार भक्ति और भगवान के प्रति असंदिग्धता—निःसंदेहता महत्व की बात है। मनुष्य जब तक ईश्वर दर्शन न करे, तब तक सचमुच संदेह दूर नहीं होता। यह संदेह अचानक तो होता नहीं और अचानक दूर हो, ऐसा भी नहीं होता। वह तो धीरे-धीरे दूर होता है। इस प्रकार जैसे-जैसे साधक आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ये तीनों वस्तुएं बढ़ती जाती हैं। ईश्वर भक्ति ईश्वर के लिए असंदिग्धता और विषय-वैराग्य ये तीनों धीरे-धीरे मंदगति से बढ़ते रहते हैं, इस प्रकार सोचना चाहिए।

□

समाचार एवं सूचनाएँ

विवेकानन्द स्मारक

हैदराबाद : 10 अक्टूबर, 1998। महबूब कॉलेज, सिकन्दरबाद के प्रांगण में स्वामी विवेकानन्द का एक स्मारक स्थापित किया जायेगा। इस योजना में 1 करोड़ 80 लाख रुपये की लागत आयेगी। अमेरिका प्रस्थान के पूर्व स्वामीजी ने 13 फरवरी, 1893 को यहाँ एक आम सभा को संबोधित किया था।

श्रीरामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष स्वामी परमार्थानन्द ने बताया कि राज्य सरकार ने हैदराबाद के जिलाधीश को प्रांगण की 1700 घन गज भूमि हस्तांतरित करने का निर्देश दिया है। उन्होंने बताया कि रामकृष्ण मठ हैदराबाद ने सरकार से 50 लाख रुपये का अनुदान देने का भी अनुरोध किया है। शेष राशि अन्य संस्थाओं एवं लोगों से एकत्रित की जायेगी

(हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 11-10-98
से संकलित : अनुवादक वसंत विवेक सागर)

सुनु कपीस लंकापति बीरा।
केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ।।[1]

(श्री मुरारी बापू)

हृदय में जब भगवान् विराजते हैं मन की सब इच्छाएँ, वासनाएँ अपने-आप पास नहीं फटकतीं। उस प्रकाश में मन की सारी अँधियारी मिट जाती है। इसलिए शान्त-चित्त से हर समय हरिस्मरण करते रहना चाहिए।

श्रीराम का परिचय पहले सुग्रीव से हुआ था, बाद में विभीषण से। जब श्रीराम के सामने विभीषण लाये गये, उन्होंने कहा—'त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ।।' भगवान् भक्त-वत्सल होते हैं। शरण में आने पर दया और उसकी रक्षा करते हैं। श्रीराम ने सुग्रीव को कहा कि जिसका मन निर्मल होता है वह मुझे पा लेता है। जबतक मनुष्य का मन निर्मल नहीं होता, उसमें कपट, छल, काम, क्रोध, द्वेष आदि तामसिक भावनाएँ रहती हैं। मनुष्य के लिये ये शत्रु हैं, क्योंकि इससे वह निरन्तर भटकता रहता है और अशान्त रहता है, पाप-कर्म की ओर झुक जाता है। इसलिए वह भगवान् को नहीं पा सकता। मनुष्य को इनसे बचना चाहिए; क्योंकि भगवान् ने उसे विवेक-बुद्धि दी है। अतः शान्ति प्राप्त करने के लिये बुरी भावनाओं का त्याग करना चाहिये। भगवान् अपने शरणागत को बिना माँगे सब कुछ देते हैं। विभीषण स्वर्णपुरी लंका त्याग कर आये थे। श्रीराम ने बिना माँगे ही समुद्र-जल से तिलक कर उन्हें लंकापति बना दिया। सुग्रीव का मौन रहना उचित था, क्योंकि जब व्यक्ति को आभास हो कि उनकी बात की कदर होगी, तभी बोलना चाहिये।

सुग्रीव के मौन रहने पर श्रीराम ने विभीषण से समुद्र पार करने का उपाय पूछा। इस गहरे समुद्र को किस प्रकार पार किया जाय? 'केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा।' यह संसार सागर भी अत्यन्त अथाह और गहरा है। समुद्र मगर, मछलियों और विषधर सर्प आदि तरह-तरह के हिंसक जीवों से भरा रहता है, इसी प्रकार यह संसार भी तामसिक वृत्तियों से पूर्ण है। इसे सब तरह से पार पाना बहुत कठिन है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि से मनुष्य ग्रस लिया जाता है। उसी में उसका अन्त होता है। बिना भगवान् की शरण गये इनसे मुक्ति मिल नहीं पाती। इसका ध्यान प्रत्येक व्यक्ति को रखना चाहिये। भगवान् राम भवसागर से सबका उद्धार करते हैं; क्योंकि भक्ति से व्यक्ति की तामसिक प्रवृत्तियाँ दूर हो जाती हैं। विभीषण नीति-निपुण थे। वे जानते थे कि भगवान् का अवतार श्रीराम के रूप में है। वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं। इसलिये उन्होंने कहा कि यद्यपि आप सर्वसमर्थ हैं, करोड़ों समुद्र को आप सुखा सकते हैं, फिर भी किसी की उपेक्षा या अवमानना नहीं करनी चाहिये।

लोकाचार की रीति है कि पहले गुरुजनों से सलाह लेनी चाहिये। इससे निर्णय लेने में सुविधा मिलती है। व्यावहारिक बात है कि मन्त्रणा सबसे करे, किन्तु मन्त्र एक ही रखे। श्रीराम ने विभीषण से

१—कुछ दिनों पूर्व जलयान पर सेतुबन्ध का दस दिवस-व्यापी कार्यक्रम हुआ था, जिसमें श्रीमुरारी बापू ने राम-कथा की थी। भाव था समुद्र देवता को कथा सुनाने का। यहाँ कथा का कुछ अंश प्रस्तुत किया गया है।

कहा कि तुमने अच्छा परामर्श दिया। यदि भगवान् की कृपा रही तो सारी सेना सागर पार करजायगी। लक्ष्मण जी को विभीषण की बात नहीं जँची। गुरुजनों की बात नहीं काटनी चाहिये। लक्ष्मण जी को अपने बल पर विश्वास था। यह अहंकार का एक रूप होता है। विनम्रता पौरुष का लक्षण है। मनुष्य में सामर्थ्य हो फिर भी अपने को निमित्त मात्र मानकर कर्म करना चाहिये। इससे अहंभाव नहीं आने पाता। अहंकार पाप होता है और विनाश का कारण बन जाता है। विश्वास केवल राम-नाम का रहे हरिस्मरण करता रहे। इससे चित्त निर्मल रहता है, बुद्धि शुद्ध रहती है। अच्छी बातें धारण करने की शक्ति बढ़ती है। इनका अनुकरण करना चाहिये। उन्हीं को चित्त में उतारकर उनका अनुसरण करे। यह उद्देश्य का साधन है, उसका अवतरण होता है अर्थात् सिद्धि प्राप्त होती है। आध्यात्मिक और लोक-जीवन में यह बात ध्यान रखने की है।

लक्ष्मण और विभीषण की मन्त्रणा सुनने के बाद श्रीराम ने लक्ष्मण से धैर्य रखने को कहा और समुद्र-तट पर गये। सागर को प्रणाम कर कुश के आसन पर बैठकर विनय की। किंतु तीन दिन बीत जाने पर भी सागर ने कुछ नहीं माना। अहंकारी मूर्ख होते हैं। अतः वे विनय को कायरता समझते हैं। ऐसे पात्र के सामने अति विनम्र नहीं होना चाहिये। जो कुटिल होते हैं उनसे सरल व्यवहार करने का फल विपरीत हो सकता है। पात्र-सुपात्र-कुपात्र का विचार कर दया, क्षमा, विनय आदि में व्यावहारिकता रखनी चाहिये।

सागर विनय की उपेक्षा करता जा रहा है। इसे देखकर श्रीराम ने उसे दण्ड देना उचित समझा। उन्होंने लक्ष्मण से धनुष-बाण मँगाने को कहा। तब समुद्र के होश ठिकाने लगे। उसने देखा कि एक ही बाण से वह सूख जायगा। ईश्वर का प्रकोप प्रलय कर सकता है। समुद्र में हलचली मची मृत्यु के भय से जीव घबराते हैं। सागर अब अपने दम्भ को त्याग कर सात्त्विक भाव से प्रभु राम के सामने आया और चरण पकड़ लिया, शरणागत हुआ। उसने अपनी भूल के लिये क्षमा माँगी और कहा कि मैं आपकी दया का पात्र हूँ। आकाश, वायु, अग्नि, जल और धरती—ये सभी जड़ होते हैं स्वभाव से ही इनके कर्म विवेकहीन होते हैं। अच्छे-बुरे का ज्ञान इनमें होता ही नहीं। किंतु ये सभी आपकी सृष्टि में हैं और आपकी ही माया है। बड़ी कृपा हुई कि आपने मेरी बुद्धि सुधारी।

सागर ने विनम्र होकर उपाय बताया कि श्रीराम की सेवा में नल और नील नाम के दो भाई हैं। इनके स्पर्श से पत्थर डूबते नहीं। इसी सन्दर्भ में उन्होंने एक रोचक कथा सुनायी कि हिमालय के कैलास पर्वत पर एक ऋषि शिव जी का पार्थिव-पूजन करते थे। नल-नील खिलवाड़ में पत्थर के शिवलिंग को उठाकर पानी में फेंक देते। ऋषि को परेशानी होने लगी। प्रतिदिन एक शिवलिंग जुटा पाने में कठिनाई होती थी। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने नल-नील को शाप के व्याज से ऐसा वर दिया कि उनके छूने पर भी पत्थर पानी में डूबेंगे नहीं। नल-नील को इस वरदान का पता नहीं चला। शिवलिंग का पानी में डूबना बन्द हो गया। दोनों भाइयों का खेल खत्म हो गया। सागर इस रहस्य को जानता था। नल-नील विश्वकर्मा के पुत्र थे। निर्माण-कला करते थे। प्रभु की सेना में नल-नील को सागर में पत्थर डालने का कार्य सौंपा गया। वे एक के बाद एक पत्थर गिराते गये, सारी सेना के सहयोग से पुल आगे बढ़ता गया और सागर ने भी सँभाल रखी। श्रीराम की सेना सिंधु पार कर गयी। असम्भव भी हरि-शरण से सम्भव हो जाता है।

[प्रेषक—श्री नन्दलाल जी टांटिया]

एक जेल का आश्रम में रूपान्तरण

एशिया में कोई भी सामाजिक सम्बन्ध पुलिस एवं जनता के मध्य अनेकार्थक सम्बन्धों की चर्चा के बिना अपूर्ण है। कानून व्यवस्था को संभालने, लोगों की सुरक्षा एवं अनेक कार्यों में पुलिस मुख्य भूमिका निभाती है। तब भी इसकी ख्याति गुरुतम से लघुतम असमर्थताओं एवं दुर्व्यवहारों के कारण धूमिल हो जाती है। अनेक लोगों के लिए पुलिस एक जरूरी बुराई है, न कि कोई सकारात्मक अच्छाई।

किरण बेदी की नई पुस्तक 'ईट्स ऑलवेज पॉसिबल में भारत के सबसे बड़े कैदखाने, तिहाड़ जेल के ८००० कैदियों के परिवर्त्तन के सफर की चर्चा है।

तिहाड़ जेल, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की मानसिकता धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुकूलन द्वारा बदली गयी, में मानवीयता एवं गाँधीवाद का प्रयोग हुआ। सामूहिक प्रार्थना-सभाओं द्वारा अनेक कैदियों को मानसिक शांति की प्राप्ति हुई। इसके अलावा, सु श्रीबेदी की पुस्तकानुसार, कैदी खुद ही सामाजिक परिवर्त्तन के साझेदार बन सकते हैं। किरण बेदी ने उनका क्या किया ?

उन्हें एक अटूट विश्वास है कि समाज के प्रत्येक पहलू के परिवर्त्तन में पुलिस अग्रदूत बन सकती है। वे कहती हैं, "पुलिस के लिए काम-काज करने की शक्ति ठीक करने एवं सुधार करने की शक्ति आवश्यक है। मुख्यत:, इसी कारण मैंने शुरू में सुधारवादी कार्य किये।"

कैदियों में यह आशा जगायी गयी कि जेल से रिहा होने के पश्चात वे एक अच्छे ढंग से जीवन-यापन करेंगे। उनकी योग्यता के स्तर को व्यावसायिक शिक्षा द्वारा बढ़ाकर, उनमें विश्वास उत्पन्न किया गया। इसके द्वारा उनके आपराधिक कार्यों में संलग्न होने की संभाव्यता न्यूनतम रह जायेगी। अच्छे कार्यों द्वारा उन पर लगे लांछन हटा दिये गये। दार्शनिक रूप से किरण बेदी सही हैं। उन्होंने जेल में अपनी नौकरी को पसन्द किया, जिसे अन्य लोग सजा के रूप में नौकरी समझते हैं।

किरण बेदी कहती हैं, "जेल में भेजा जाना एक सजा है। पर यह केवल सजा देने का स्थान नहीं है। यह अपराध उन्मूलन का अन्तिम स्थल है।

कारावासों में कुव्यवस्था की झलक एवं अपराधियों की अमानवीय दशा थी। भ्रष्टाचार को स्थान देने वाली अधिकारियों की कुण्ठा, चिकित्सकीय सुविधाओं की कमी, मैले अंधेरे कक्ष, कैदियों के बच्चों की दयनीय स्थिति, समाचार पत्रों के कतरनों का दस्तावेज हैं।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय (इग्नू) द्वारा प्रदत्त उपाधियों से विभूषित कैदियों द्वारा दैनिक प्रार्थना द्वारा सुधार कार्य का विकास प्रारंभ होता है।

किरण बेदी के अनुसार यह यात्रा आसान न था, पर समाज के प्रत्येक तबके से प्राप्त सहयोग द्वारा ही यह सम्भव हो पायी।

महत्त्व दिये जाने पर, उपेक्षित कैदियों ने जबरदस्त उत्साह दिखाया। इस दिशा में पहला कदम, उनकी परेशानियों से अवगत होने के लिए एक शिकायत-पेटिका का लागू किया जाना था।

अच्छे भोजन एवं उन्नत चिकित्सकीय सुविधाओं ने सुधारवादी प्रक्रिया में गति लाने में मदद दी। तब निर्दोष बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गयी। इस कार्य में स्कूलों, शिक्षकों शिक्षाविदों, विश्वविद्यालयों, गैर सरकारी संस्थानों एवं समाजवादियों ने पूर्ण सहयोग दिया।

स्वस्थ शारीरिक स्थितियों के अलावा कैदियों के सम्पूर्ण विकास के लिए उचित वातावरण का निर्माण किया गया। 'विपासना' नामक एक ध्यान करने की विधि द्वारा उन्होंने गुस्सा एवं तनाव को दूर करने में सफलता पायी।

'जेल पंचायत' कुछ कैदियों का एक समूह है, जो कि एक विशेष कार्य के लिए जवाबदेह होती हैं। इसके द्वारा उनमें उत्तरदायित्व की भावना एवं संगठन क्षमताएँ विकसित होती हैं। इन सबसे बढ़कर उन्हें यह एहसास होता है कि वे एक अपराध रहित जीवन-यापन कर सकते हैं।

सुश्री बेदी कहती हैं, "कैदी भेद-भावना भूलकर दीवाली, होली, ईद, क्रिसमस, स्वाधीनता दिवस इत्यादि मनाते हैं। अनेकता में एकता लाकर इन असामाजिक तत्त्वों को एक रहने का मार्ग मिल गया है।

उन सबों द्वारा लिखी गयीं कविताएँ उनकी प्रतिभा दर्शाती हैं, पर हमारी कानून-व्यवस्था की तुच्छता को भी दर्शाती हैं। एक ऐसी अवस्था जिसमें न्याय युगों तक इंतजार करता है, पर अन्याय नहीं। न्याय में हुई इस देरी के कारण लोगों को अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग जेल में व्यतीत करना पड़ता है। यह केवल दास्तावेजीकरण ही नहीं है, पर उन अनजान आत्माओं की आवाज है, जो जेल की चारदीवारी में अपना आधा जीवन गुजार चुकी हैं।

इन सारे प्रयासों का पल्लवित, पुष्पित फल, तिहाड़ जेल एक आश्रम में तब्दील हो गया है। यहाँ कैदी कैद नहीं रहते, पर एक अच्छे जीवन के लिए तैयारी करते रहते हैं। यह भविष्य के लिए एक आशा का निर्माण करती है कि अगर देश के सबसे खूँखार अपराधियों से भरा स्थल यदि आश्रम में बदल सकता है, तो देश भी वर्त्तमान अव्यवस्था से बाहर आ सकता है। हमें केवल दृढ़-निश्चय की जरूरत है क्योंकि सब कुछ संभव है।

साभार—हिन्दुस्तान टाईम्स
नई दिल्ली १२-११-९८
अनुवादक—वसन्त विवेक सागर
छपरा

दो प्रेरक प्रसंग

9. मनोबल

स्वामी विवेकानन्द काशी में घूम रहे थे। आयु अभी कच्ची ही थी। उन्हें एक सूने स्थान से होकर गुजरना पड़ा। एक ओर बड़ा-सा तालाब था और दूसरी ओर ऊँची-ऊँची दीवार। काशी में बन्दर बहुत होते हैं, सो कुछ बन्दर उनके पीछे लग गये। पहले तो वे चुप रहे; लेकिन जब बन्दरों ने अधिक तंग किया तो वे भागने लगे। उनको भयभीत जानकर तथा भागता हुआ देखकर बन्दर और भी अधिक तंग करने लगे। कभी पाँव में लिपटते, कभी काटते। इस प्रकार वे तंग आ गए। कुछ राहगीरों ने देखा तो कहा—अरे भागो, तेज भागो नहीं तो बन्दर तुम्हें मार डालेंगे।

अब तो विवेकानन्दजी को चिन्ता हुई। वे और भी तेजी से भागे, लेकिन बन्दर भी उसी तेजी से भागे। भागते-भागते अचानक उन्होंने सुना—ठहरो, मुकाबला करो बन्दरों का, भागोगे तो मरोगे।

इतना सुनना था कि बिजली जैसी स्फूर्ति से विवेकानन्दजी ठहर गए और तनकर खड़े हो गए। उनका इस तरह तनकर खड़े होना बन्दरों के लिए नई बात थी। अब तो विवेकानन्दजी ही उनकी तरफ झपटे और चिल्लाए—भागो। भागो यहाँ से!

बन्दरों ने उनका परिवर्तित व विकराल रूप देखा तो डर कर भाग गये।

भागने से रोकने वाले सज्जन उनके पास आए और बोले—तुम भाग क्यों रहे थे? तुम्हें मुकाबला करना चाहिए था।

—कैसे करता, मेरे हाथ में तो कुछ भी नहीं था। खाली हाथ भला कहीं मुकाबला होता है?

—अभी बन्दर कैसे भगाए? कैसे मुकाबला किया? खाली हाथ ही न?

विवेकानन्दजी अपनी ही बात पर झेंप गए। सज्जन मुस्कराकर बोले—हाथ खाली रहें अथवा भरे हुए; उससे कुछ नहीं होता। दिल में ताकत होनी चाहिए। ताकत न हथियार में होती है, न हाथ में; असली ताकत तो भीतर होती है।

("प्रेरणा-दीप" से)

२. बातें नहीं, काम करो

युग-प्रवर्तक साहित्यकार वाल्टेयर एक चौराहे पर आकर खड़ा ही हुआ था कि कुछ नवयुवकों ने उसे पहचान लिया। समाज में तथा राष्ट्र में एक नवीन जागरण व क्रान्ति के लिये वाल्टेयर प्रयत्नशील था और अपने लेखों में वह इसी प्रकार के विचारों का प्रकटीकरण भी कर रहा था। नवयुवकों के अतिरिक्त अन्य कुछ विद्यार्थी भी वहाँ एकत्रित हो गए और आग्रह करने लगे कि वाल्टेयर अपने कुछ विचार रखे।

उस उत्साही लेखक ने अपना भाषण आरम्भ किया—मित्रो, स्वतन्त्रता रक्त माँगती है, शरीर का गरम, उबलता हुआ और लाल रक्त। रक्त देखकर ही स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और बलिदान से ही स्वतंत्रता की रक्षा होती है।

उपस्थित सभी नवयुवक वाल्टेयर का जयनाद करते हुए नारे लगाने लगे। वे बोले—हम स्वतंत्रता के लिए अपना रक्त चढ़ा देंगे।

वाल्टेयर ने उन नवयुवकों की तरफ देखा जो गाल बजा रहे थे। वह व्यावहारिक था। उसे कोरे आदर्शवाद तथा नारेबाजी से चिढ़ थी। क्रोध में काँपते हुए उसने नवयुवकों को ललकारा।

—चुप रहो, तुम लोगों से क्रान्ति नहीं हो सकती।

—क्यों? क्यों नहीं हो सकती क्रांति? हम क्रांति करेंगे और रक्त अर्पण करेंगे। नवयुवक एक साथ बोले।

वाल्टेयर ने ऊँचे स्वर में कहा—अपने पीले; सूखे और उतरे चेहरे देखें हैं कभी? रक्त अर्पण करोगे, पर रक्त है कहाँ? शरीर में जान नहीं, साँसों में गति नहीं, चेहरे पर रौनक नहीं और बातें करते हो क्रांति की! अभी-अभी मैंने कहा है स्वतन्त्रता और क्रांति रक्त माँगती है। तुम्हारे पास रक्त नहीं है, इसलिए तुम्हें स्वतन्त्रता की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सभी नवयुवकों ने एक दूसरे का चेहरा देखा और अनुभव किया कि जो कुछ कहा गया है, सत्य है।

वाल्टेयर ने फिर कहा—जाओ, नारेबाजी से काम नहीं चलेगा, क्रांति पैदा करने से पहले अपने शरीर में लाल रक्त पैदा करो।

नवयुवक उस समय तो चले गए, किन्तु शीघ्र ही फ्रांस की क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।

('प्रेरणा-दीप' से)

सूचना

विवेक शिखा

का

स्वामी भूतेशानन्द स्मृति अंक

'विवेक शिखा' का मार्च-अप्रैल १९९९ का अंक रामकृष्ठ मठ एवं रामकृष्ण मिशन के द्वादश परमाध्यक्ष ब्रह्मलीन स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज की पावन स्मृति में 'स्वामी भूतेशानन्द स्मृति अंक' के रूप में प्रकाशित होगा।

'स्वामी भूतेशानन्द स्मृति अंक' का मूल्य १० रुपये निर्धारित हैं। यह अंक विवेक शिखा के नियमित ग्राहकों को बिना अतिरिक्त मूल्य के ही प्रदान किया जाएगा।

अतः विवेक शिखा के कृपालु ग्राहकों से नम्र निवेदन है कि वे अगले वर्ष के लिए अपनी ग्राहकता का नवीकरण ५० रुपये का मनीआर्डर अथवा विवेक शिखा के नाम से बैंक ड्राफ्ट भेजकर शीघ्र करा लेने की कृपा करें।

इस वर्ष कई अपरिहार्य कारणों से पत्रिका कुछ विलम्ब से पाठकों के पास जाती रही है। अपनी विवशता और प्रकाशन में हुए विलम्ब के लिए हमें हार्दिक खेद है। अतएव, अपने सहृदय ग्राहकों से हम अनुरोध करते हैं कि वे हमारी त्रुटियों के कारण हुई असुविधाओं के लिए हमें क्षमा प्रदान कर अपनी ग्राहकता का नवीनीकरण करा लेने की कृपा करें।

हमारा विश्वास है कि अगले वर्ष हम 'विवेक शिखा' का नियमित प्रकाशन करने में समर्थ हो सकेंगे। आपका स्नेह ही हमारा सम्बल है।

नव वर्ष की अशेष शुभकामनाओं सहित—

डॉ० केदारनाथ लाभ
सम्पादक
विवेक शिखा

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के शिष्य
स्वामी सारदानन्दजी द्वारा लिखित
भगवान श्रीरामकृष्णदेव की बृहत् जीवनी

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

तीन खण्डों में मूल्य रु. १०५/-

भगवान श्रीरामकृष्णदेव का
अपने शिष्यगण, भक्त तथा
दर्शनार्थियों के साथ वार्तालाप

श्रीरामकृष्णवचनामृत

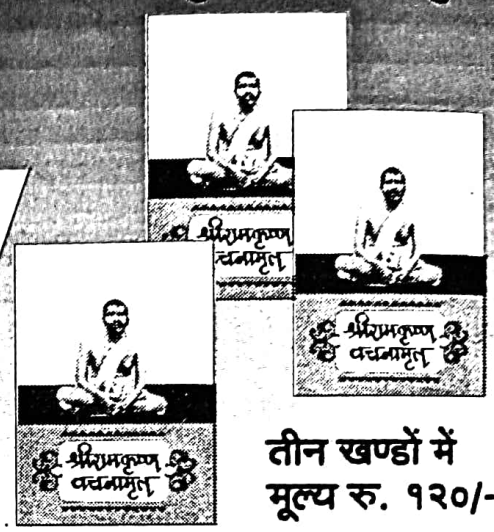

तीन खण्डों में
मूल्य रु. १२०/-

स्वामी गंभीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की
संपूर्ण विस्तृत जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में मूल्य रु. १४०/-

स्वामी विवेकानन्द कृत योगविषयक पुस्तकें

ज्ञानयोग
मूल्य रु.२५.००

राजयोग
मूल्य रु.२०.००

कर्मयोग
मूल्य रु.१३.००

भक्तियोग
मूल्य रु.१२.००

प्रेमयोग
मूल्य रु.१५.००

अधिक जानकारी के लिए लिखें : रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।